❁ नमः श्रीरामाय ❁

ानसशंकासमाधानरत्नावली

तीसरा भाग

लेखक :--

मा० न० पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी

परम प्रचंड प्रताप प्रगटि पुहुमी पर प्रभु बर ।
मायामृग मारीच मारि दिय माया यति कर ॥
जयी जटायुहिं धाम देइ जटिला शबरिहिं थपि ।
सूर्यसुतहि सनमानि विपुल बल देइ थापि कपि ॥
बाणबेधि बालिहि विनशि बालि सुतहि युवराज करि ।
मुँदरी वायु "कुमार" कहँ दिय कपि शिर कर कमल धरि ॥

प्रकाशक :--

वै० भू० मानसरसिक ठा० श्री रामशरण सिंह भुवाल रामायणी

मायणी

१-गाँडाडीह (दुर्ग) म० प्र०
२-सिकोला भाठा (दुर्ग) म० प्र०
३-सोनपाँडर, पो० देउरगाँव (दुर्ग) म०

मुद्रक-श्याम मुद्रणा

❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

श्रीमानस शंका समाधान रत्नावली

(तृतीय भाग)

लेखक—

मानसतत्त्वान्वेषी **पं० रामकुमारदासजी** रामायणी

श्रीरामग्रन्थागार मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी

ये दोषाः समुदीरिता बुधगणै रामेऽथ रामायणे
निर्जीवा किल साधुतर्करहिताः या याश्च दुर्युक्तयः ।
ग्रन्थेह्यत्रविवेचनैश्च विविधैः सच्छास्त्रतः खण्डिताः
सत्यासत्यविवेकपूर्णकुशलास्ते शीलयन्तु स्वयम् ॥

(पं० श्रीबज्रांगदासजी, रामायण संदर्भ)

प्रकाशक—

वै० भू० ठा० रामशरणसिंह भुवाल रामायणी

गाँड़ाडीह (दुर्ग) म० प्र०

सम्मुखीनम्

ले०—शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्यः) साहित्य वेदान्ताचार्यः एम०ए० (हिन्दी संस्कृत) वेदान्त विभागाध्यक्षः-आयोध्यिक श्रीहनुमत् सं० म० विद्यालय, हनुमद् दुर्गस्य ।

श्री पं० रामकुमारदास रामायणी, 'मानसतत्त्वान्वेषी' प्रणीतः 'मानस शका समाधानाभिधस्य ग्रन्थस्य तृतीयः खण्डः प्रकाश्यते, इति ज्ञात्वा मोमोदते चेतः । 'रामच ित मानसः' श्रीमद्गोस्वामो तुलसीदासेन प्रणीतो ग्रन्थः अन्तरराष्ट्रीयां ख्यातिमावहति । नूनमस्यैव ग्रन्थस्य माध्यमेन सम्पूर्णभारतवर्षस्यादर्श जीवनम्, कृत्स्नां भारतीयां संस्कृतिम्, वेदानां वेदान्तानां तदुपवृंहणानाञ्च तत्त्वानि, दर्शनानां सर्वमान्यां सरणीञ्च 'हुलसी' तनुजन्मा गोस्वामीतुलसीदासो नाना पुराण निगमागम सम्मतया पद्धत्या आविश्चकार भाषायाम् ।

सोऽय रामचरितमानसाभिधो ग्रन्थः समकालमेव सुकरावगाह्यतां दुष्करावगाह्यताञ्च तथैव विभर्ति यथास्यग्रन्थस्य प्रतिपाद्यभूतो भगवन् श्रीरामचन्द्रः समकालमेव अखिलकल्याणगुणगणाकरत्वात् सगुणतां निखिलानां हेयानांप्राकृतिकगुणानां प्रतिभटत्वात् निर्गुणताम् । अतएव सामान्यतः गेयत्वेन, हृद्यत्वेन, भाषासौष्ठव सम्पन्नसारल्ययुक्तत्वेन चास्य ग्रन्थरत्नस्याध्ययने प्रवृतेभ्यो जनेभ्यः सर्वथा सुलभावगाह्योऽयं ग्रन्थः । मन्ये न भवति भारतोयः कश्चन भारतीयाया भारत्या अभिज्ञो यो न जानाति रामचरितमानसं ग्रन्थम् । न केवलं भारतीया एव अपितु वैदेशिका अपि रामचरितमानसं विदन्ति पठन्ति च श्रद्धया भक्त्या च । परञ्च-येऽस्य ग्रन्थस्य तत्त्वविवेचने, ग्रन्थकर्तुरभिप्रायाणां प्रकाशने च सन्ति सर्वथा सत्तृणां तेभ्यो जनेभ्यो सर्वथा दुष्करावगाह्योऽयं ग्रन्थः । अस्य ग्रन्थस्य

भावानां प्रकाशनानुकूलक्षमतायै वेदान्तानां तदुपवृंहणग्रन्थानाञ्च गहनमध्ययनमावश्यकं बर्तते ।

इमे श्री पं० 'रामकुमारदास' रामायणी महाभागाः नूनमर्हन्ति 'मानसतत्त्वान्वेषिणः विरुदम्, यतो हि इमे सर्वाणि कार्याणि विहाय सर्वदा रामचरितमानसस्य तत्त्वानाम्, तन्मूलानाञ्च प्रकाशने कालं क्षिपन्ति । वेदवेदान्तपुराणेतिहासधर्मशास्त्राणाम् तद्व्याख्यान ग्रन्थानाञ्चाहोरात्रमध्ययनम् इमे 'श्रीरामचरितमानसस्य' तत्त्वानां विकासनार्थमेवाकार्षुः । एभिः प्रणीताः प्रकाशिताश्च त्रिशत्संख्या केभ्योऽप्यधिका ग्रन्थाः रामचरितमानस्य प्रकरणानां पंक्तिनाञ्चाशयं प्रकाशयन्ति । बहोःकालादिमे रामचरितमानसविषयिणीनां शंकानां समाधानं कुर्वन्ति; शास्त्राणां स्फीतालोके । अत्रमानस विषयकाणाम् समागतानां पत्राणमुत्तराणि एव समाधानतां गतानि । तेषां संकलनमेव मानस शंका-समाधान ग्रन्थस्य खण्डानाम् अनवद्यो विग्रहः । बालकाण्ड सम्बन्धिनीनां शंकानां समाधानानि प्रथमखण्डे, अयोध्याकाण्डस्य शंकानां द्वितीये खण्डे, अस्मिन् तृतीये खण्डे चारण्यकाण्डस्य शंकानां समाधानानि संगृहीतानि सन्ति ।

भगवतो श्रीरामचन्द्रान् प्रार्थयेऽहम् यत्तेइमान् श्रीरामायणी महाभागान् दीर्घजीविन आरोग्यसम्पन्नांश्चकृत्वा अनेनैवप्रकारेण पुण्यानां ग्रन्थानां वेदशास्त्राविरुद्धानां प्रणयनं तेषां प्रकाशनञ्च एतेषांमाध्यमेन कारयित्वान्ते श्रीमद्गोस्वामि साहित्यस्य सौख्य सम्बर्द्धनंकारयन्तु इति ।

विदुषामाश्रवः—

शिवप्रसाद द्विवेदी

श्याम सदन, कटरा

अयोध्या ।

अभिनन्दन

डा० श्रीरामतववया शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्, हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

सारस्वत—साधना के प्रतिमान, प्राच्य-विद्या के जीवित विश्वकोष, तुलसी-साहित्य विशेषज्ञता के पर्याय तथा साधुत्व, वैदुष्य एवं तर्क-कौशल के अपूर्व संगम पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी ने समग्र भारतीय वाङ्मय में अन्तर्निहित विचार धारा के स्वस्थ, ऊर्जस्वल तथा वर्चस्वी स्वरूप के प्रकटीकरण एवं प्रचार-प्रसार में असाधारण योगदान किया है। भारतीय संस्कृति एवं साधना के आधारस्तम्भ गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी की दिक्कालजयी रचना 'श्रीराम चरित मानस' के सम्बन्ध में उत्पन्न शंकाओं का समाधान उन्होंने जिस विदग्धता, वैज्ञानिकता और मार्मिकता से किया है, वह सर्वथा समर्हणीय है। वस्तुतः ऐसे ही सत्प्रयास के लिए 'न भूतो न भविष्यति' का कथन सत्य प्रतीत होता है। मेरा दृढ़ विश्वास है, 'श्री मानस समाधान रत्नावली' को पढ़कर घोर-से-घोर तार्किक और कट्टर-से-कट्टर विरोधी भी जगजननी पार्वती की दशा को प्राप्त होगा—

"सुनि शिव के भ्रम-भंजन बचाना।
मिटि गइ सब कुतर्क कै रचना ॥" (मा. १. ११९. ७)

अस्तु, इस अनर्घ ग्रन्थ-रत्न का मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और अनन्त श्री-विभूषित आचार्य-प्रवर से प्रार्थना करता हूँ कि 'समाधान-रत्नावली' के अन्य रत्नों को भी यथाशीघ्र प्रकाश में लाने की कृपा करें।

रामतववया

❀ भूमिका ❀

(ले० पं० श्रीजानकीनाथ शर्मा शास्त्री सम्पादन विभाग कल्याण)

पं० श्रीरामकुमारदासजी की पुस्तकें महत्व की होती हैं। उनकी सूझबूझ शास्त्रीय परिश्रम को देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। आपकी पुस्तक समाधान रत्नावली प्रकाशित हो रही है। यह अत्यन्त रोचक पुस्तक उनके दीर्घकालिक स्वाध्याय भजन तथा तपस्या का फल है।

मानस की शंकाओं पर बहुतों के समाधान आदि प्रकाशित होते रहे हैं। पर यह ध्यान देने की बात है कि अधिकांश ने अपने बुद्धिचातुर्य से ही समाधान किये हैं। कुछ लोगों ने मानसकी ही पंक्तियों द्वारा समाधान करने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि गोस्वामीजी का अध्ययन विशाल था। उन्होंने 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' यह ग्रन्थ लिखा था। उनकी बहुत सी पंक्तियों की संगति केवल मानस से ही नहीं लग सकती। उनकी कुछ बातें ऐसी हैं जिनके लिये झंख मारकर ग्रन्थान्तरों की शरण लेनी ही पड़ती है जैसे 'गौतमनारीशापबस उपलदेह धरि धीर' गाधि तनय सब कथा सुनाई। जिहि प्रकार सुरसरि महि आई॥ आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षण्मुख जन्म सकल जगजाना॥ भइ जग बिदित दक्षगति सोई। 'यह इतिहास सकल जगजाना॥'

आदि में कवि स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि इनके जानने के लिये अन्य ग्रन्थ देखने चाहिये। यह बात मानस ही क्या बाल्मीकिरामायण के विषय में भी है। बालकांड सर्ग ६४ का यह श्लोक ध्यान देने योग्य है—

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोध जयेषिणम्।
दशवर्ष सहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे ॥१०॥

ब्राह्मणः सुमहातेजास्तपोबलसमन्वितः।
उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥११॥

ग्रन्थान्तर न देखने वाले तथा परम्परा का अन्धानुसरण करने वाले प्रायः सभी टीकाकारों ने इस उद्धारक ब्राह्मण का नाम बशिष्ठ बतलाया है किन्तु वास्तव में यह कथा स्कन्दपुराण के ब्रह्म-खण्ड में है। वहां रामसेतु कुण्ड में गिरने तथा रामरज से पूत होने के कारण अहिल्या ही का भांति इसका तथा उर्बशी का उद्धार होना बताया है। इसमें हेतुमात्र ब्राह्मण होता है जो एक राक्षसी के बध के लिये अपने धनुष पर उस शिलाका ही सन्धान करता है जो वास्तव में रम्भा थी।

पं० श्रीरामकुमारदासजी का शास्त्रीय अध्ययन अत्यन्तगहन है। उनके जीवन का यही एक प्रधान विषय रहा है। 'रुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिद हि महात्मनाम्' को आपने करदिखाया है। आपने समाधान में तर्क, युक्तियां, मानस, गोस्वामीजी महाराज के अन्य ग्रन्थों के साथ ही समस्त वेदपुराणागमों का भी भाव उड़ेल दिया है। आपके समाधान सर्वोत्तम हुये हैं, यह कोई भी पाठक स्वीकार करेगा। आपकी प्रत्येक रचना में श्रम एवं सूक्ष्म अनुसंधान पूर्वक तत्त्वोद्घाटन रहता है जिससे निरतिशय आनन्द आता है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इधर आपने मानस का भागवतादि श्लोकों के साथ तुलनात्मक चौपाइयां लिखी हैं। अब तक कई नाटकों, भगवद्गीता तथा भागवत [illegible] चुका है। यद्यपि इस दिशा में काशीकी एक सस्था पर्याप्त धन लगा कर कार्यकर रही है। पर उसका कार्य सर्वथा नगण्य है। ऐसाकार्य धन या धनियों के वश की नहीं है। वह तो कोई भगवत्कृपापात्र सच्चा प्रेमी भक्तही कर सकता है। यदि आपकीवह पुस्तकेंभी प्रका-

शित हो सकी तो विद्या तथा अनुसंधान क्षेत्रमें एक अद्भुत देन होगी।

वस्तुतः आज के जगत में ग्रन्थ तो बहुत ही प्रकाशित हो रहेहैं, बिना समझें बूझे लिखने वाले लेखकों का भी अभाव नहो है। किन्तु ऐसा साहित्य बरदान नहीं, अभिशाप हीं सिद्ध होता है।' पण्डितजी की पुस्तकऐसे लेखकों तथा सामान्य जनता सबके लिये सब प्रकार से शिक्षाप्रद तथा कल्याणकारी ही सिद्ध होगी, ऐसी आशा है। पण्डित जी तप भजन तथा स्वाध्याय के मूर्तिमानरूप हैं। हमारे सौभाग्य से उनकी जितनीही कृतियां सामने आयेंगी, हमारा परम उपकार ही होगा।

❁ लेखक की ओर से ❁

श्रीमत्तुलसिदासस्य भारती भोगिदंशिता।
मम रत्नावली हीयं तामद्योज्जीवयिष्यति॥
(क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरबारिधेः।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मंदरः॥ कस्यचित्)

बिबिधबिचार सयुक्ति तर्क शंका समधानी।
ऋषि मुनि वेद पुराण शास्त्र सम्मत सुप्रमानी॥
श्रुति गुरु शास्त्र उच्छिष्ट रखी नहिं कछु मनमानी।
मानस का शुचि भाव कहा समझे अज्ञानी॥

अपने ढगसे शंकासमाधान करने का सूत्रपात मैंने मानस-पीयूष प्रथम संस्करण में श्रीगुरुपदरजः बन्दन को लेकर किया था मानसमणिमें आरम्भसे ही उसके प्रबन्धक, प्रकाशक बाबू शारदा-प्रसादजी के सुझाव पर 'शंकासमाधान' स्तम्भ रखा गया। प्रेमियों की शंकायें आतीं और मैं समाधान करता। फिरतो अन्य पत्रोंने भी इसे अपनाया। इसमें मैं शंकाकारों एवं बाबू शारदा प्रसाद जीमन्त्री मानससंघका बहुत-बहुतही कृतज्ञ हूं। यदि शंकाकार सज्जन

गण नई-नई शंकायें न करते तो मैं ऐसी-ऐसी शंकायें नहीं ही उठा सकता था और मंत्रीजी मुझसे समाधान न कराते तो मैं न तो मानसमें इतना गोताही लगा सकता और न समाधानकी पुष्टिके लिये सद्ग्रन्थों का इतना गहन अनुशीलनही कर सकता था।

मानसमणि एवं पत्रपत्रिकाओं में दोसौ से ऊपर शंकाओं पर मेरे समाधान निकल चुके हैं। इधर दूसरे शंकाकार लोग प्रायः पूर्व प्रकाशित शंकायें ही प्रेषित करने लगे, पर मुझे पिष्टपेषण अभीष्ट नहीं रहता और सभी पत्रपत्रिकायें सब देख नहीं पाते हैं और उनके अङ्कभी स्थाई नहीं रहते। इससे मैं उन शंकासमाधानोंको ग्रन्थ रूपमें प्रकाशित करता हूँ। ग्रन्थ में प्रायः सभी समाधान परिवर्द्धित हैं। मैं सभी शंकाकार सज्जनोंका पता देना चाहता था परन्तु अपनी अज्ञानतासे विवश हूँ। सुना है यूरोपमें पत्रपत्रिकाओं के स्वामी भरपूरपारिश्रमिक देकर ही किसी तरह का भी लेख लेते हैं। इसीसे लेखके साथ में लेखक का नाम तो देते हैं, परन्तु साथमें लेखकका पता नहीं छापते। लेखकसे कोई परिचय करना चाहे तो पत्र स्वामी के माध्यमसे कर सकता है। भारतमें अंग्रेजों के बेटे-पोते-शिष्यादि जो हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के संपादक-प्रकाशक आदि होते हैं वे लेखकके नामके साथ चाहे तीन हाथकी लम्बी पूंछ (उपाधि, डिग्री) हो उसे तो तीन पक्ति में लेखके साथ में छापेंगे पर तीन अंगुल का ग्राम पो० जिला तीन शब्दों में लेखके साथ नहीं छापेंगे। इसीसे अपने कृपालु शंकाकार सज्जनों में सबका पता मैं नही दे सका और जिनका पता किसी तरह ज्ञात हो सका उनका पता उनकी किसी शंकाके साथ में दे दिया है।

पं० श्रीजानकीनाथ शर्माजीने अपनी सौजन्यता से भूमिका

लिखदी है, पर उन्हें कुछ कहना हो स्वयं अपने आपकोही कहना है वे इतने अपनेहैं। किसी भी समाधान पर मेरा कभी भी 'इद-मित्थम्' का दुराग्रह नहीं रहा करता, परन्तु पूर्वाचार्य सिद्धान्त विरोध रहित सच्छास्त्र एवं सत्तर्कका अनुगमनतो हृदय और मस्तिष्क करताही है। सच्छास्त्रानुसार सुझाने पर मैं अपनी भूलों त्रुटियों (गलतियों) को मानने के लिये सदेव तैयार रहता हूँ।

मेरे पास यदाकदा मौखिक सूचना आया करती है 'अमुक अमुक रामायणी बन्धु कहते हैं कि प० रामकुमार दासजी तो वेद पुराणों के पण्डितहैं, उन्होंने किसी परम्पराके रामायणीसे रामायण लगायाही नहीं है।' इत्यादि मैं इसे सर्वथा स्वीकार करता हूँ कि सौभाग्यवश मैंने परम्परा के किसी रामायणी से श्रीतुलसी साहित्य नही लगाया है अर्थात् मैं घोखू (रट्टू) रामायणी नहीं हूँ'

गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज ने अपने दीक्षागुरू से श्रीरामचरित्र पढ़ सुनकर नानापुराण निगमागम का मंथन करके तब श्रीरामचरित मानसका प्रणयन किया है। श्रीगोस्वामीजी सरीखे नाना पुराण निगमागम के मंथन करने की किंचित् भी क्षमता मुझमें नही है। अपने सद्गुरुको दीहुई कुंजी से प्राप्य पुराण निगमागम द्वारा श्रीतुलसी-साहित्य के समझने, लगाने की चेष्टा जागरूकता से करता रहता हूँ। इसे मैं पुनः स्वीकार करता हूँ कि मेरे इस ढंग से श्रीतुलसी के अनुशीलन का अधिक श्रेय शंकाकार सज्जनों को ही है। हां जिन शंकाओं का समाधान दूसरों के द्वारा लिखा गया मुझे कहीं पढ़ने को मिला और वह कुछ ठीक मालूम पड़ा, उन शंकाओं का समाधान मैंने नहीं किया है। प्रेस की प्रेतलीलामें पड़कर मुद्राराक्षस ने कहीं कुछ का कुछ।

मुद्रण कर दिया हो। जिसे विज्ञ पाठक सुधार लेने की कृपा करेंगे।

भगवद्भागवतानुचरः—
पं० रामकुमारदासः
जनवरी १९८१ ई०

—❀—

पुनरुक्तिं परित्यज्य क्रमेणायं मया कृतः।
बालानां सुखबोधाय न तु पाण्डित्यगर्वतः॥

अत्र प्रमाणं यत्किंचित् प्रमादाल्लिखितं मया।
विद्वद्भिः सुविचार्यैव शोधनीयोऽनसूयिभिः॥

समाधानं मयामूलैर्बहुग्रन्थैर्यथाकृतः।
तथैवानेकश्रुतिभिरुद्धृतो मानसंग्रहः॥

महाखेदान् मया सर्वं यथा स्थानं नियोजितः।
प्राज्ञं बिना प्रयासं मे को ज्ञास्यति विमूढधीः॥

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमः।
नहि बन्ध्या विजानाति गुर्वीप्रसववेदनाम्॥

ये शास्त्रसंग्रहे मूढा नैव जानन्ति योग्यताम्।
ते कथं हि भविष्यन्ति हर्षिता पठनेऽस्य च॥

समाधानानिमान्निग्धाः पठन्तु न पठन्तु वा।
मया तु स्वीय बोधाय कृतमेतन्न संशयः॥

गच्छतःस्खलनं क्वापि भवेदेव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

अयुक्तमस्मिन् यदि किञ्चिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा।
औदार्यकारुण्यविशुद्धधीभिर्मनीषिभिस्तत् परिमार्जनीयम्॥

मुद्राकरकराघातकातरा क्वापि भारती।
करुणार्द्रकरस्पर्शैः सुधियः शोधयन्त्विमाम्॥

त्रुटिश्चेदुपलभ्येत मुद्रणे दृष्टिदोषतः ।
प्रार्थ्यते ग्रन्थकारेण क्षन्तव्यं सुमनीषिभिः ॥
(संकलित)

—❀—

श्रियः श्रियै नमः

जाको चण्ड अखण्ड जश व्यापि रह्यो ब्रह्मण्ड ।
सब जग की रक्षा करत सो वैष्णवी त्रिदण्ड ॥

मानस पीयूष के आरम्भ काल से ही मैं लेख देता आ रहा हूँ। पीछे मानस-मणि "प्रेम सन्देश" "कल्याण" एवं नाम माहात्म्यादि सार्वजनिक तथा समन्वय "श्रेय, रामानन्द सन्देश" "विरक्त" एवं "विवेक रश्मि" आदिक अनेक साम्प्रदायिक पत्रों में मेरे लेख यदा-कदा छपते रहे। वे लेख कई सौ हैं। कई बड़ी बड़ी पुस्तकें भी हैं। अब हाथ काँपने के कारण लिख नहीं पाता। कोई लिखने वाला पास रहता है तो कभी-कभी बोलकर नया लेख लिखा देता हूँ। अनेक प्रेमी मित्रों एवं शिष्यों के आग्रह से प्रकाशक मिलने पर उन्हीं लेखों को छोटी-छोटी पुस्तिका का रूप दे देता हूँ। मेरे परम प्रिय शिष्य छत्तीस गढ़ के लोक-प्रिय सुप्रसिद्ध वक्ता वचभूषण ठाकुर श्रीरामशरण सिंह भुवाल रामायणी इस मानस शंकासमाधान रत्नावली के तृतीय भाग का प्रकाशन कर रहे हैं उन्हें मेरा शुभाशीर्वाद है।

पं० रामकुमार दासः

—: शंकायें :—

शंका १

विशुद्ध तपस्वी वेष में होते हुए भी श्रीरामजी ने वाल्मीकि
 अपने लिये नरेश क्यों कहा था कि-

मुनि तापस जिनते दुख लहहीं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं॥
और नरेश मानकर जयंत को दंड क्यों दिया ?

महान्त श्रीरामदास जी श्रीवैष्णव, रामडीह कुटी

समाधान

तपनतनयतप नय निरत, तपी-त्रसक तप हेतु ।
भुविजानुज सँग भ्रमत बन, भव्य भानुकुल केतु ॥

कारण विशेष वश श्रीरामजी चौदह बर्ष के लिये विशुद्ध
पस्वी वेष में रहकर बानप्रस्थ नियम पालन के लिये बाध्य थे।
नवास के पूर्व श्रीरामजी प्रजा पालक थे

आयसु मांगि करहिं पुर काजा।

और वनवास के बाद तो राजा रहे ही। अतः 'पतित संदे-
शनन्याय' से बनवास काल में भी राजनियम पालन करना अनि-
ार्य था और—

पिता दीन मोहि कानन राजू ।

के वक्तव्य से वन का संरक्षकत्व प्राप्त था। और बन में
षियों ने स्पष्ट शब्दों में श्रीरामजीको अपना राजा स्वीकार
किया था कि आप चाहे नगर में (राजसी ठाट से) रहें और
चाहे वनमें (तपस्वी वेष में) रहें, हर हालत में आप हमारे
राजा ही हैं और हम बनवासी मुनि तापस गण आपसे उसी तरह
क्ष्य हैं जैसे आपके पूर्वज राजाओं से रक्षित होते आये हैं।
इसका वर्णन आदि कवि के शब्दों में पढ़िये—

ते वय भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।

नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥२०॥
न्यस्त, दण्डा वय राजन् जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः ॥ २१ ॥
वाल्मीकी० रा० ३।१।२०,२१)

इसीसे रावणभी तापस्वी वेषधारी श्रीरामजीको भूप-राजा कहता

हौं मारि हौं भूप द्वौ भाई ।

इन सब प्रमाणों को देखते हुये श्रीरामजी का अपने आप नरेश कहना सर्वथा न्याय है । और जयन्त को दण्ड देना भी

शङ्का २

(क) उदासीन होकर श्रीरामजी ने जयंत को स्वयं ही क दंड दिया ? निकटवर्ती किसी दण्डाधिकारी (जिला मजिस्ट्रेट या भरत जी से न्याय कराते '

(ख) चोंच मारने मात्र से उतना कड़ा दंड क्यों ? यदि ला या महासम्राट् की स्त्री के पैर में कोई छड़ी से मार देवे तो उ ज्यादा से ज्यादा २ मास की जेल हो सकती है न कि आँख फोड़ दे

(ग) जब दण्ड ही दिया तब शरणागत रक्षक कैसे ?

(डा० राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा पटना)

समाधान

सगुणगणसारं सज्जनानन्दकारं त्रिभुवनसुखसारं सन्तत सद्विचा
विमलतरविहारं निर्जितानन्तमारं प्रमुदितपरिवारं नौमि कोशलकुमा

स्वयं नरेश कभी भी जिला मजिस्ट्रेट के पास अभियो उपस्थापन विनयपत्र दावा किया नहीं करते अपितु स्वयंही विच किया करते हैं । अन्य के पास तो राजपरिवारके अतिरिक्त लो ही विनय पत्र दे सकते थे । ऐसा स्वतंत्र भारत का नियम था

तासु निसाफ करइ सोइ राजा । नाहि न कछु कोतवालते काजा

(विश्राम सागर)

चक्रवर्ती श्रीदशरथजी ने श्रीभरत को जनपद का ही यौवराज्य दिया था वन का नहीं। वन के शासक जंगलात मुहकमे के सर्वेसर्वा दण्डविधायक न्यायाधीश तो श्रीरामजी को दशरथजी ने नियुक्त किया था।

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ॥

दक्षिणापथ में भी महर्षियों ने श्रीरामचन्द्र जी के ऐसा मानने पर कि—

भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेश वर्तिनः ।। (वा०रा० ४।१८।२३)
स्पष्ट शब्दों में श्रीरामजी से ही कह दिया।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं ना राजा जनेश्वरः ॥ (वा०रा० ३।१।२०)

यद्यपि श्रीरामजी का स्वभाव बतलाया गया है कि—
निजअपराध रिसाहिं न राऊ। दीन बन्धु अति मृदुल सुभाऊ ॥
और स्वयं श्रीरामजी का कहना भी है कि—

कोटि विप्र बध लागहिं जाहू।
आये शरन तजौं नहिं ताहू ॥

श्रीभरतलालजी भी दावेके साथ अपनी मान्यता का परिचय देते हुये कहते हैं कि—

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोप न काऊ।।
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निशील निरीश निशंकी।
तेउ सुनि शरन सामुहे आये। सकृत प्रनाम किये अपनाये ।।

परन्तु किसी प्रकार के कुचोद्य करने के पूर्व यह न भूलना चाहिये कि—

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः । अत्रिः ।
प्रभु के बचन वेद बुध सम्मत मम मूरति महिदेव मई है ॥
(विनय पत्रिका १३९)

इत्यादि वचनानुसार ब्राह्मण भगवच्छरीर भगवद्दूत हैं अतएव

ब्राह्मण ब्रध भगवदपराध है और-

"निज अपराध रिसाहिं न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ ।।

परन्तु यह भी निश्चित तथ्य है कि-

जो अपराध भक्त कर करई । राम रोष पवक सो जरई ।।

नित्य एश्वर्य भाव में तो श्री सीताराम जी दो हैं ही नहीं ।

—गिरा अरथ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।।

सीतारामेति युगलं वस्तुतस्त्वेक रुपिणम् । वि०सा०)

परन्तु लीला माधुर्य में श्रीजानकीजी ने सर्वत्र अपने आपको श्रीरामजी की भक्ता रूप में प्रगट किया है ।

करिहैं मोहि रघुपति कै दासी । 'जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी'

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी । विपुल सकल सेवाविधि गुनी ।।

"निज कर गृह परिचर्या करई । राम चन्द्र आयसु अनुसरई ।।"

"राम पदारविन्द रति करति सुभावहिं खोइ"

"अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ।।" (वा.रा. ५।११।१५)

प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई । कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ।।

श्रीजानकी जी भागवत स्वरूपा थी । अतएव महाभागवतापराध करने के कारण जयन्त उसी समय श्रीरामरोष पावक में जल नहीं गया । यह प्रभु की बड़ी कृपा हुई । बड़ा छोह हुआ । और आपने जो लार्ड महासम्राट् की स्त्री और छड़ी की मार का दृष्टान्त दिया है वह मनुष्य के लिये तो लागू हो सकता है परन्तु पक्षी खासकर कौवे के लिये नहीं । मनुष्य पर ही जुर्माना या जेल दिया जाना सम्भव एवं उचित है । पक्षी के लिये मानवी कानून की चर्चा करना पागल पन की सीमा की द्योतिका हैं ।

दूसरी बात विचारणीय है कि जब—

सुरपति सुतधरि बायस बेषा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ।।

जो बल देखने की इच्छा से सभ्यता का व्यवहार न करके न्य अपराध कर बैठता है उसे यदि बिना कड़ा दंड दिये यों कोरे-कोरे छोड दिया जाता तो उसे शायद कुछ काल में भूल ाता जैसे कि- काक समान पाक रिपु रीती। छली मलीन कबहुँ प्रतीती। वाले जयन्त के पिता ने आगे चलकर किया कि गवान् श्रीकृष्ण ने तो सुरभी का संकोच मान कर दया करके ना कुछ दण्ड दिये ही 'ब्रज नाश चेष्टित' इन्द्र को छोड दिया ा। परन्तु थोड़े ही दिन मे भूल जानेके कारण परिजातापनयन े समय इन्द्र ने पुनः भगवान् से युद्ध छेड़ दिया। जिससे बल खने की अभिलाषा पुनः न उठे इसी से—

"एक नयन करि तजा भवानी।"

ऐसा कर देने से सदैव याद बनी रहेगी स्पष्ट रूप से यही तथ्य कहा गया है कि-

सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आंखि इक फोरा।

सदैव स्मरण बने रहने से एक तो कभी भगवत भागवतापराध नहीं करेगा दूसरे किसी तरह भी भगवत स्मरण बने रहने से अन्त में उसका परम कल्याण मोक्ष हो जायेगा। फिर उसे अन्य देवताओं की तरह यह न कहना पड़ेगा कि—

भव प्रवाह सन्तत हम परे।

तीसरी बात- धर्मशास्त्रोद्घोषित राजनियम है कि—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेतेह्याततायिनः॥
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् (वाचस्पत्यम्)

इस राजनियमानुसार जयन्त का बध ही उचित था-

"यद्यपि तिहि कर बध उचित"।

परन्तु उक्त राजनियम का पूर्णतया पालन आततायी जयन्
लिये इस कारण नही किया गया कि वह—

आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि-त्राहि दयालु रघुरा

अतः परम कृपालु श्रीरामजी के –"मम प्रन शरनागत
हारी ।" के कारण ही उसका प्राण बचा दिया गया क्योंकि
तो प्राणों का ही भय था।–

प्राण संसयमापन्नः (पद्म० पु०उ० खं०२२४।१०६)

तभी तो शिवजी ने कहा कि—

कीन्ह मोहवश द्रोह यद्यपि तिहि कर बध उचित ।
प्रभु छांड्यो करि छोह, को कृपालु रघुबीर सम ॥

क्या कभी आपने विचार किया है कि यदि कोई दुष्ट कि
की माता की आंख में मारेगा तो समर्थ पुत्र उस अपराधी
क्या दंड देगा । और खासकर स्वतंत्र शासक पुत्र क्या करेग
यदि बुद्धिमान पुरुष विचारेगा तो उसके विचार में निश्चय
से यही आयेगा कि ऐसे मातृनेत्रघाती को तो प्राण दण्ड ही दे
चाहिये । जैसे कि कुणाल के नेत्र फोड़वाने वाली अपनी प
त्रिया सामराज्ञी तिष्यरक्षिता को प्राणदण्ड की आज्ञा सम्
प्रियदर्शी अशोक ने दिया था। यह दूसरी बात है कि उस रा
तिष्यरक्षिता के प्राण को राजकुमार कुणाल और युवराज्ञी का
माला ने अपनी ओर से बचा लिया हो। काक वेषधारी जय
श्रीराम माता कौशिल्या जी की नयन पुतलिका में चोंच मा
था । अतः 'तिहि कर बध उचित" ही था। श्रीचक्रवर्ती दश
जी ने कौशिल्या जी को आज्ञा दिया था कि "बधू लरकिनी
घर आई । राखिउ नयन पलक की नाईं।' इसी से कौशिल्या
ने भी वैसा ही किया कि–

तात त । राखिउँ प्रान जानकिहि लाई

यह जान रखना चाहिये कि श्रीजानकीजी तो श्रीराम माता
ल्याजी की नेत्र पुत्तलिका प्राणाधार जीवनमूरि थीं—
र बेलि जिमि बहुबिधि लाली । सींचि सनेह सुधा प्रतिपाली ॥
नमूरि जिमि जुगवत रहिऊँ । दीप बाति नहिं टारन कहिऊँ ॥
सिय भवन रहै कह अम्बा । मोकहँ होइ बहुत अवलम्बा ॥
भूता श्रीजानकीजी के श्री अंगों पर आघात करने वाले जयन्त
प्राणदण्ड न देकर भगवान को अपनी--
राम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु । गीता १६/१९

इसी प्रतिज्ञा के अनुसार उसे घोर नरक भोगकर काक, कर, शूकर आदि योनियों में जन्म देकर चाण्डाल आदि योनियों नाना यातना भोगाना उचित था ।

अथ य इहकपूयचरणा अभ्यासो ह यत्तेकपूयां योनिमापद्येरन्
श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥
(छा० उ० ५।१०।७)

अनेक योनियों में यातना न भोगाकर जब—
"प्रभु छाँड्यो करि छोह" तब
जो नहिं दण्ड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥
कहने वाले कठोर दण्डप्रद भगवान श्रीशंकरजी ने कहा कि—
"को कृपाल रघुबीर सम"

कई लोग कहते हैं कि श्रीरामजी ने काक जयन्त की आँख ड़ दी थी इसी कारण संसार के सभी कौवे एकाक्ष-काने हो हैं । ऐसा कहना सरासर गलत है; क्योंकि श्रीरामजी ने कभी सी काक की आँख नहीं फोड़ी थी । काक रूप धारी जयन्त ब—

"धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं"

तो उसके बाद पुनः रूप नहीं बदला था। इसीसे

"नारद देखा विकल जयन्ता" और।

सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आँखि इक फो

जयन्त जब अपने असली रूप में था तब उसे

"एक नयन करि तजा भवानी।"

यदि सज्जनतोषन्यायानुसार गलत बात को मान भी लि जाय तो जयन्त समस्त काक मात्र का पूर्वज नहीं था। उसके कारण सभी कौवे काने क्यों हों? वह सभी कौवों प्रतिनिधि नहीं था। यदि एक कौवे के कारण सभी काक को वही गति होती हो; तब तो संसार के सभी कौवों की स्थिति होनी चाहिये जो स्थिति श्रीकाकभुशुण्डिजी की श्रीरा के द्वारा प्रदत्त वरदान से है। अर्थात्—

"सब शुभ गुन बसिहहिं उर तोरे"

"भक्ति ग्यान विज्ञान विरागा। जोग चरित्र रहस्य विभाग जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा माया सम्भव भ्रम सब अब न व्यापिहहिं तोहि।" जब ऐसा है तो जयन्त के कारण सभी कौवे काने क्यों हों? अनेकों कौवे पकड़ कर देखे गये हैं, वे एकाक्ष-काने नहीं होते।

शंका-३

जयन्त का पलायन सभी लोको में हुआ था, वह दो घड़ी अथवा दो चार दिन में तो हुआ न होगा, कई दिन लगे ही होंगे क्योंकि—

ब्रह्मधाम शिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित व्याकुल अति शो

उस समय लक्ष्मणजी कई दिनों तक श्रीसीतारामजी को छोड़कर कहां थे जो उस प्रसंग में उनका कोई संकेत भी

मिलता ? (कुँवर श्रीनिवासदासजी पोद्दार-कलकत्ता)

समाधान

रसिकन सुखदायक रचे महारास सरकार ।
लीला अति माधुर्य लखि मोहित इन्द्र कुमार ॥

मरुय साधिराज श्रीरामसखेन्द्रजी ने "मानस विज्ञान" नाम से श्रीरामचरित मानस की टीका लिखा था जो, गोस्वामी ब्रदर्स १३ महेन्द्रबाम लेन, श्याम बाजार, कलकत्ता में छपी है उस मानस विज्ञान टीका के—

जुक्ति मन्जु मनिसीप सुहाई ॥

पर अड़तालीस दोहा और पाँचसौ चौपाइयों में चित्रकूट में होने वाली श्रीसीतारामजी की महारास का वर्णन है । जिसमें कहा गया है कि महारास आरम्भ करने के पूर्व प्रातःकाल जब लक्ष्मण जी बन में कन्द मूल फल लेने गये तो—

सीता प्रथम चरित यह कीन्हा । बन फलकन्द मूल हरि लीन्हा ॥
लछिमन खोजे सब बन माही । एकउ कन्दमूल फल नाहीं ॥
खाली हाथन कैसे जावे । लखन लाल मन में पछितावें ॥
अस विचारि तरुवर के छाई । पौढ़ि रहे तरु पात बिछाई ॥
यहि बिधि रहे लखन मनहारी । सीता प्रभुता करी पसारी ॥
× × × ×
फिर विश्वकर्मा आ शिर नाई । आज्ञा देव जनम फल पाई ॥
सीता ताको बचन उचारे । आज स्वामि दिन जन्म हमारे ॥
दो०—सुन सबको अचरज भयो स्वामिन जगत अधार ।
जाने सबके स्वामि यहि बोले स्वामि हमार ॥
चौ०—फिर सब मन में करे विचारा । इनके महिमा अगम अपारा ॥
जो कुछ कहे सत्य सब मानी । मृषा नही सब सत्य प्रमानी ॥

प्रथम करो सिय बोली कामा । जहँ वन में लक्ष्मन विश्रामा ।।
किन्नर सहस वीर तुम जावो । विश्वकर्मा तुम भवन बनाओ ।।
किन्नर पहरा दे तहँ जाई । कहि अस सीता बचन सुनाई ।।
सतवाँ दिवसे उठन बखाने । तज आओ लक्षिमन नहि जाने ।।
निद्रा को सिय वचन प्रकाशा । लछिमन नेत्र करो तुम वासा ।।
विश्वकर्मा लक्षिमन ढिग आये । बसन भवन फूलन से छाये ।।
मणिन रचित शुभ पलंग बनाये । लखन लाल तापर पौढाये ।।
पहरा दे किन्नर मन लाई । चँवर विजन लक्षिमन शिर ढाई ।।

× × × ×

सात दिवस अस भयो अनंदा । महारास तिहि नाम प्रबन्दा ।।

जिस स्थल पर महारास हुआ था वह मन्दाकिनी तट पर रामघाट से लेकर स्फटिक शिला तक फैला है । जानकीकुण्ड और प्रमोदबन मुख्य स्थल हैं । जहां देवांगनाओं का पड़ाव पड़ा था उसका स्मारक तीर्थ देवांगन और जहां अन्य लोग-महारास में भाग लेने वाले ठहरे थे उसका नाम कोटि तीर्थ है और जहां श्रीलक्ष्मणजी सात अहोरात्र सोये थे वह स्थल भी लक्ष्मण पहाड़ी अथवा लक्ष्मण टेकरी के नाम से आज भी प्रसिद्ध है । वह स्थल कामदागिरि की-परिक्रमा करते समय बांयी तरफ पड़ता है । उन्हीं सात दिनों में जयन्त का पलायन आदि हुआ था । इससे जयन्त प्रसंग में लक्ष्मणजी की सांकेतिक चर्चा भी नहीं आती है ।

शंका-४

जयन्त से बढ़कर अपराध सीताजी के प्रति रावण का था तब उसे सद्यः दण्ड क्यों नहीं दिया गया ?

(बाबू हरिहर सिंह-फैजाबाद)

समाधान

श्रीमत् तुलसीदासाय रामभक्ताय साधवे ।
सीतारामपदाम्भोजभ्रमराय नमो नमः ॥

(१) जयन्त ने असली सीता का अपराध किया था और वह भी श्रीरामजीके प्रत्यक्ष में-

सीताऽऽचरन चोंच हतिभागा ।

सीता +आचरन अर्थात् स्तनों में, आंचरका अर्थं स्तन श्रीमैथिली शरण गुप्त ने लिखा है ।

नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आँचर में है दूध और आंखों में है पानी ॥
(यशोधरा महाकाव्य)

बाल्मीकि ने भी स्तनमेंही लिखा है देखिये वा० ५ । ३८ । २२

वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे ।
"अपिमाषं मखं कुर्याच्छन्दो भंगं न कारयेत् ।"

इस छंद शास्त्र के नियमानुसार चन्द्रविन्दु न लगाकर 'सीता-ऽऽचरन' लिखा गोस्वामी जी ने ।

जिसे तुरन्तही "चला रुधिर रघुनायक जाना । " परन्तु रावण ने नकली सीता का अपराध किया वह भी श्रीरामजी के परोक्ष में। जिसका पता कई महीना बाद लग सका ।

(२) (क)नकली सीताने भागवतापराध किया था, अर्थात् लक्ष्मण को कटु बचन कहा था ।

(ख) नकली सीताने अकेले में असली लक्ष्मण को कुछ कटु वचन मर्मान्तिक वाक्य कहा था-

मरम बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लछिमन मति डोली ॥

इसीसे नकली सीता को लंका में बहुतों के सामने—

तिहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुरबाद ॥

शंका–५

'निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा विविध प्रकार' विविध प्रकार के पूजन में अर्घ्य के पश्चात् और कुछ भोजन मधुपर्क नैवेद्य फलादि, अर्पण के बाद आचमन का विधान आपने मा. पा. पू. पद्धति में लिखा है। परन्तु बरेली के प० शंकर दयालु शर्मा ने आचमन के संबन्ध में शंका प्रगट किया है कि आह्निक सूत्रावली प्रतिष्ठा प्रकाश बा०ह० प० और संस्कार दीपक आदि ग्रन्थों में स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, पुष्पमाल, आभूषण, धूप और दीप आदि के बाद बार बार आचमन कराना चाहिये लिखा है। सो कब कब आचमन कराना चाहिये ?

(शारदा प्रसाद मन्त्री मानस संघ रामबन सतना)

समाधान

अर्चत अर्चक भावभरि राखि शास्त्र श्रुति कानि ।
इष्ट 'कुमार' प्रसन्न चित; दें बर हिय पहिचानि ॥

मालूम नही श्रीशंकरदयालजी ने उन ग्रन्थों का नाम सुन लिया है, पढ़ा देखा नहीं। यदि देखा होता तो वैसा न लिखते। संस्कार दीपक ग्रन्थ मैने भी नहीं देखा है, परन्तु अन्य तीन ग्रंथ तो मैंने भी देखा है। उनसे तो मेरे ही लेख की पुष्टि होती है।

१—संवत् १९९८ बि० निर्णयसागर प्रेस की सातवीं आवृत्ति जिल्ददार आह्निकसूत्राबली के पृष्ठ १४५–१४७ के प्रकरण में १७१–१७४ तक में ३८ उपचार का वर्णन है परन्तु वहाँ एक ही बार केवल अर्घ्य के बाद ही आचमन का विधान है। और पृष्ठ १५६–१५७ में श्रीशंकराचार्य जी के मत से वैदिक और तांत्रिक दोनों के प्रतीक दिये हैं उसमें भी अर्घ्य और नवेद्य के बाद केवल दो

बार आचमन का उल्लेख है ।

२—संवत १९४८ वि० की निर्णय सागर प्रेस की छपी सांची
त प्रतिष्ठा प्रकाश पृष्ठ १८ में अर्घ्य और नैवेद्य के बाद दो
र ही आचमन का विधान है ।

३—संवत् १९५५ वि० में ब्रह्मानन्द प्रेस काशी साँची । (पत्रा-
ार छपी वाशिष्ठी हवन पद्धति के पृष्ठ नौ पर गणपति पूजन
केवल नैवेद्य के बाद पृष्ठ दस में गौरी पूजन में भी और पृष्ठ
७ में ६४ देवियों के पूजन में भी केवल एक बार ही नैवेद्य के
के बाद आचमन का उल्लेख है । इसके अतिरिक्त 'वृहद् ब्रह्मसंहिता'
भगवत्पूजन पद्धति,' 'रामार्चनचन्द्रिका' 'सदाशिवसंहिता' साधन
विधि एवं अर्चन पद्धति आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी वस्त्र यज्ञोप-
वीत आदि के बाद आचमन कराने का उल्लेख नहीं है । पूजन
संबन्धी मेरे देखे हुये ग्रन्थों की लम्बी तालिका है, एक प्रमाण
और देता हूँ । सुप्रसिद्ध 'मासिक कल्याण' के सन् १९४० ई० के
साधनांक के पृष्ठ २३७ पर "पूजा के विविध उपचार" शीर्षक
लेख में ६४।१८।१३।१०। और पांच उपचार मुख्य बताये गये है
उनमें ६४ उपचारों में एकबार अन्त में, १८ में दो बार; १६ में
दो बार और १० में एकबार आचमन कराना है, पंचोपचार में तो
एक बार भी नही है । वहीं पृष्ठ २३८-२४० में पूजा के १६ मंत्र
दिये गये हैं; उनमें भी दो ही बार आचमन है । आज कल न जाने
कब से और किस तरह एक बिगड़ी एक अनावश्यक रीति चलपड़ी
है कि प्राय: लोग आरती के बाद आचमन कराते हैं और साफी
दिखाते हैं । परन्तु आरतीके बाद आचमन नहीं ही कराना चाहिये
क्योंकि इसका न तो कहीं सच्छास्त्रीय विधान है, और न कोइ
भाव ही है । यह तो संभवत: कभी किसी संभ्रान्त पुरुष ने किसी

कारण बश किया होगा उसी की देखा-देखी अबिचारित परम्परा चलपड़ी है जो सर्वथा अनुचित है । अति विपरीत है । अतः बारं-बार पुनरपि आचमन पुनरपि आचमनम् और आरती के बाद आच-मन नहीं ही कराना चाहिये । आर्त्ती के बाद तो आदर्श = दर्पण दिखाने को भगवच्छास्त्र में लिखा है यथा--

नीराजयेद् विधानेन नानाबाद्याभिवादनैः ।
आदर्शं दर्शयेत् पश्चात् प्रणिपात् प्रदक्षिणा ॥

(नारदपांचरात्रीय· वृहद्ब्रह्मसंहिता पाद ४, अध्याय२, श्लोक १६७) आदर्श दर्पण दिखाने का मंत्र है–

(क) अदर्श एवासि जगत्त्रयस्य तथा तवादर्शं इदं जगच्च ।
ज्ञात्वापि सेवासमयोचितत्त्रादादर्श आदर्शत एव देव ॥
(गोपाल पूजन पद्धति)

(ख) स्वच्छस्फटिकसंकाशं प्रतिबिम्बनिदर्शकम् ।
आदर्शं प्रतिगृह्णीष्व जानक्या सह राघव ॥
(मा०पा०पू०प०)

शंका–५

'निशिचरहीन करौं महि उठाइ प्रन कीन' लंकाविजय के बाद भी जब—सुनिनिशिचरी निशाचर धाये ।

लंका मे निशिचर रहे ही तब महि निशिचर हीन कहाँ हुई ।
(महांत श्रीभगवती दास जी, हुवली)

समाधान

कामद के तट पर्णकुटी वट वृक्ष तले लट खोलि सुखते ।
देखत श्रीमिथिलेश लली दिशि जा पट छोड़ मृगी शिशु खाते ॥
नाचत मोर लखे धनश्याम चकोर लखे मुख श्रीहर बाते ।
देखि तहाँ सियराम कुमार कुमार प्रफुल्लित भाग्य लखाते ॥

(क) ऋषियों ने बताया कि—

निशिचर निकर सकल मुनि खाये ॥

तब श्रीरामजी ने कहा कि जिन मुनियों की अस्थियों का यह स्तूप लग गया है उन मुनियों को जिन निशिचरों ने खाया है उन "निशिचरहीन करौं महि०" वे निशिचर गण पंचबटी से शरभंग आश्रम तक रहते थे, खरदूषण के सैनिकगण; उन निशिचरों को मारकर श्रीरामजी ने महि को निशिचर हीन कर दिया।

(ख) रावणबधोपरान्त लंका में जो निशाचर बच रहे थे वे सब विभीषण के अनुयायी होकर भगवद्भक्त हो गये ॥

शंका–६

श्रीरामजी के चौदह वर्ष के बनवास में तीन स्थान पर कुछ दिन डट कर रहना पाया जाता है। चित्रकूट, पंचबटी और ऋष्यमूक के शिखर पर (प्रवर्षण) पर। इनमें पहिले और पिछले दो स्थानों पर देवताओं के द्वारा श्रीरामजी का निवास स्थान बनाना है।

१– रमेउ राम मन देवन जाना। चले सहित सुरथपति प्रधाना ॥
कोल किरात वेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाये ॥

३– प्रथमहिं देवन गिरिगुहा राखी रुचिर बनाइ।

और दूसरे स्थान अर्थात् पंचवटी पर प्रभु को स्वयं छप्पर छाना पड़ा।

२– गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ।

ऐसा क्यों हुआ ? देवगण वहाँ स्थान क्यों नहीं बनाये।

पं० रामरक्षित शुक्ल रामायणी

समाधान

दर्श किये मुहरे दुख द्वन्दनि पाप नशाइ सुहर्ष ब[illegible]।
पर्शत ही बल बुद्धि बढ़े मुख जातहि ज्ञान विराग [illegible]वें ॥

भक्ति बढ़ै अवधेश "कुमार" में आतम शुद्ध स्वरूप लख
पार करै भवसागर से गुरु के पद की रज शास्त्र बतावै

(क) महर्षि श्री अगस्त्यजी ने श्रीरामजी के निवास स्थान पर कहा था कि--

दण्डक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर ह

अर्थात् श्रीरामजी के जाने के पूर्व तक दण्डकारण्य श्रापित से अपुनीत था। और देवता लोग अपुनीत स्थान में जा सकते। स्वेच्छा से जायँ तो उनका देवत्व ही नष्ट हो जाय। छिपकर (गुप्त रूपसे) भी देवता लोग नहीं गये थे। इससे प्रवर्ष की तरह प्रथम से हीकोई स्थान नहीं बना सके थे।

(ख) और श्रीरामजी के जाने ही जब दण्डकारण्य पवि गया तब वहां चित्रकूट की तरह कोल किरात वेष मे भी दूषण आदि के भय से नहीं गये क्योंकि वहां तो आस प कुछ तेजस्वी महर्षियों के अतिरिक्त और कोई मनुष्य र गया था। जब कि--

निशिचर निकर सकल मुनि खाये।

और जो थोड़े से सामान्य मनुष्य साधारण मुनि आदि ब होंगे वे अगस्त्यादि तेजस्वी ऋषियों के समाश्रित होक होंगे और उन्हें खरदूषणादि पहिचानते भी रहे होंगे ही उनके वेश में आने से भी भय ही था क्योंकि खर औ तो रावण के समान ही बली थे। रावण ने ही कहा था

खरदूषण मोहि सम बलवन्ता।

इसी से देवता लोग उनसे सदा भयभीत रहा करते थे। लंका में श्रीरामजी सदलबल उपस्थित थे वहां भी।

डरे सकल सुर चले पराई॥

और खरदूषण से भी भयभीत रहने वालों में देवताओं का प्रथम स्थान है। इसी से--

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥

अतएव श्रीरामजी के जाने से दण्डक बन के पवित्र हो जाने पर भी देवता लोग खरादि के भय से कुटिया बनाने नहीं आये। दोनों भाइयों को अपने हाथों से पर्णगृह छा लेना पड़ा।

(ग) तीसरे यह कि देवता लोगों में किसी को भी मालूम नहीं था कि श्रीरामजी दण्डकारण्य में पंचवटी के किस प्रदेश में कहां रहेंगे। जब कि श्रीलक्ष्मणजी को ही पूँछना पड़ा अर्थात् जब श्रीरामजी ने कहा कि किसी ऐसे उत्तम स्थान पर आश्रम बनाओ जहां हम तीनों आनन्द से रहें तो श्रीलक्ष्मणजी ने कहा कि जहां आप कहिये वहां पर कुटिया बनाऊँ। तब श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी का हाथ पकड़ कर स्थान बताकर कहा कि 'यहां पर' आश्रम बनाओ। इस सम्बाद को विस्तार से वाल्मीकीय रामायण अरण्य काण्ड के पन्द्रहवें सर्ग में देखिये--

ततः पंचवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम्।
उवाच भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्॥१॥
आगतः स्म यथोदिष्टं य देशं मुनिरब्रवीत्।
अयं पंचवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः॥२॥
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि।
आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति सम्मतः॥३॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यतां देशः सन्निकृष्टजलाशयः॥४॥
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा।
सन्निकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम्॥५॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः ।
सीता समक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥७॥
सुप्रीतिस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः ।
विमृशन्रोचयामाश देशं सर्वगुणान्वितम् ॥८॥
स त रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत ॥९॥
अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥१०॥

(घ) लोक में प्रायः देखा जाता है कि लोग दूसरों के कृत्यों जरा सा भी छिद्र पाते ही दोष देने लगते हैं; परन्तु श्रीरामजी-

न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ।

(वा०रा०अ०का०

तो भी लोक प्रथा ही को अधिक महत्त्व देने वाले देवगणों ने इ डर से किसी तरह का वास स्थान नहीं बनाया कि यहीं सीताजी का हरण होना है ही; किन्तु पीछे लोग हमें दूषण दे लगेंगे कि जब साक्षात् देवताओं के हाथ से निर्मित घर से महा अनिष्ट हो गया; तो फिर गृहनिर्माणादि में वास्तुदेवादि क स्थापन पूजन क्यों किया जाय ? क्या इनसे किसी अनिष्ट क निवृत्ति हो सकती है ? इससे तो लोक में देवता की पूजा प आघात पहुँचता और अपयश हो सकता था । और इन्हीं कारण से सदा स्वार्थी देवगण दण्डकवन में गृह निर्माण करने नहीं गये ।

शंका—८

शूर्पणखा ने कहा था कि--

ताते अब लगि रहिउ कुमारी ।
'अब लगि" कहने का क्या तात्पर्य था। केवल "कुमारी"
ने से ही काम चल जाता ?
श्रीविश्राम दास रामायणी अनउर गाजीपुर"

समाधान

अब लगि क्वाँरी रहिउँ कहि निशिचरि आयु वृतान्त ।
ताडि लियो तिहिकोतुरत धन्य उरमिला कान्त ॥

अभी कुछ शताब्दी पूर्व मुसलिम बिजेता लोग युद्ध करने ते थे तो अपना हरम (रनिवास) एवं अन्य परिवार साथ ही ाते थे । लगता है वे लोग रावण की बनाई परम्परा राक्षसी म्परा को ही अपनाये थे, युद्ध में हरम साथ रखना, भक्ष्याभक्ष्य ण करना क्रूर (निर्दय) स्वभाव का होना आदि । तपस्या के से बली रावण सभी ग्रहों उपग्रहों के लोक में जाता था सप-वार सपरिकर—

व शशि पवन बरुन धन धारी। अगिनि काल जमसब अधिकारी।
कपालन के लोक सुहाये। सूने सकल दशानन पाये ॥

आजके वैज्ञानिक भी मानते है कि वृहस्पति आदि ग्रहों का दिन हमारे (भारतीय मानवों) के कई वर्ष के बराबर होता जब रावण लोकान्तरों में लड़ता था तो हमारे बहुत बर्ष बीत ते थे इस कारण मृत्यु के समय रावण की भारतीय वर्ष गणना आयु पांच करोड़ इकसठ लाख साठ हजार वर्ष की थी—

पंचकोटिस्तु वर्षाणां संख्याता सख्यया प्रिये ।
नियुतान्येकषष्ठं च संख्यावद्भिरुदाहृतः ॥ २९
षष्ठि चैव सहस्त्राणि बर्षाणां स हि रावणः ।
देवतानामृषीणां च कृत्वा घोरप्रजागरम् ॥ ३० ॥

(स्कन्दपुराण प्रभास खण्ड अ० २२१ वायु पु० ७०।४४-४७ ।
चतुर्युगानिराजाऽत्र त्रयोदश च रावणः ॥
(वायु पुराण ७०।४५)

यही आयु शर्पणखा की भी थी—
अनेक युग जीविन्यास्त्रेता यस्यास्त्रयोदशी ।
सा क्षीरकण्ठं वत्सं वृषस्यन्ती न लज्जिता ॥
(महावीर चरित ना० ५।११)

दोहावली में गोस्वामी जी ने लिखा है कि—
कपट सार सूची सहस बाँधि वचन पर वास ।
किय दुराव चह चातुरी सो शठ तुलसीदास ॥ दोहावली ४१०

किसी ने इसी दोहे के अनुवाद में लिखा है कि—
सचाई छिप नहीं सकती कभी झूठे वसूलों से ।
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से ॥

शूर्पणखा को तीना लोकों में बर ढूंढना और अबतक कुमारी रहना कहना उसका स्वैरिणी एवं बहुत कालिक होना सिद्ध है

शंका ६

सीतहि चितइ कही प्रभुआता । अहइ कुमार मोर लघुभ्राता ।
श्रीलक्ष्मण को कुमार क्यों कहा ? (लक्ष्मीधर पाठक)

समाधान

दिव्यारामाभिरामे ललितलतिकया लम्बमाने निकुञ्जे,
नित्ये नित्यालिपुञ्जाखिलजनगणाराधिते चोर्मिलेशे ।
श्रीरामानन्यभक्ते प्रणमितचरणे स्वच्छचामीकराभ,
प्रीतिर्मेनिर्मलास्यात् कपटविरहिते मित्रसौमित्रिसंज्ञे ॥
"शब्द रत्न मञ्जरी" नामक कोष में "कुमार" शब्द का पर्या

दिया हुआ है कि—

कुमारो दश वर्षीयो कुमारोद्वाहवर्जितः ।
अपत्नीको कुमारस्तु कुमारो नृपनन्दनः ॥

अर्थात "कुमार" कहते हैं दश वर्ष तक के लड़के को (चाहे वह ब्याहा हो चाहे अनब्याहा । "कुमार" कहते हैं अनब्याहे पुरुष को (चाहे उसकी अवस्था कुछ भी हो) "कुमार" कहते हैं अपत्नीक=विधुर को अर्थात् जिसकी पत्नी साथ न हो (चाहे किसी भी कारण से) और "कुमार" कहते हैं उस राजपुत्र को जिसका कि राज्याभिषेक न हुआ हो । चाहे वह बृद्ध ही क्यों न हो जाय पर वह "कुमार" ही कहा जाता है ।

यहां राजकुमार (राज्याभिषेकरहित) के अर्थ में तो कवि (वक्ता) ने श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयों को "कुमार" कहा था—

शूर्पणखा रावन कै वहिनी । दुष्ट हृदय दारुण जसि अहिनी ॥
पंचवटी सो गइ इक वारा । देखि विकल भइ "युगलकुमारा"

और आपकी जिज्ञासित पंक्ति में श्रीरामजी के (लक्ष्मणजी को) कुमार कहने का तात्पर्य श्रीलक्ष्मणजी के अपत्नीकत्व से है अर्थात् श्रीलक्ष्मणजी की पत्नी साथ में नहीं है और श्रीरामजी सपत्नीक हैं । उनकी पत्नी श्रीसीताजी साथ में हैं । इसीसे तो श्रीरामजी ने अपनी पत्नी की ओर देखकर कहा—

सीतहि चितइ कही प्रभु वाता । अहइ "कुमार" मोर लघु भ्राता ॥

अर्थात् मेरी पत्नी मेरे साथ है । किन्तु मेरा छोटा भाई अपत्नीक (कुमार) है । इसकी पत्नी इसके साथ नहीं है । यही बात स्पष्ट शब्दों में व्यासजी ने लिखा है—

१- सभार्योऽहमभार्यो गच्छमेऽनुजम् ॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण ४।६२।३८)

अन्य रामचरित्र मर्मज्ञों ने भी ऐसा ही लिखा है । देखिये—

२- ३ = कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे ।

(रघुवंश ११।३४।। नृसिंह पुराण ४६।४०)

रघुवंश के श्लोक को नृसिंह पुराण में ज्यों का त्यों संग्रह कर दिया गया है अथवा कालिदासजी ने ही नृसिंह पुराण से लेकर रघुवंश में रख लिया होगा ।

४- अ-स्त्रीकोऽसावहं कलत्रवान् । (भट्टिकाव्यम् ४।२६)

५- ममानुजमतिबलमबलावियुक्तमाश्रयितुं तवेति रामेण प्रत्याख्याता सौमित्रिमुपेत्य यथामनीषितमभाषत । (चम्पूरामायण ३।१५ के बाद)

६- भववाद् दयितस्तवानुरूपी विपिने सन्निधति नास्य पत्नी ।

(उदार राघव ५।९६)

७- अ-बधूकतयोऽनुतप्यमानः । (उ० रा० ४।९६)

शंका-१०

गइ लछिमन रिपुभगिनी जानी

रिपु कौन ? कैसे जानी ? इस प्रसंग में ईश्वरत्व लाना क्या उचित होगा । (महांत रघुवरदासजो)

समाधान

सहसशीश अहीश के जो बक्ष पर नित राजते ।
जगतस्रष्टा चतुर्मुख जिसु नाभिकंज विराजते ॥
भूमि भय को टारने के हेतु जो नृप सुत बने ।
वे रामबन्धु उदार लखन कुमार नित भावत मने ॥

(क) श्रीलक्ष्मणजी का अवतारही निशिचरोंके मारनेके लिये हुआ है और निशिचरगण पृथ्वी के भार हैं—

परद्रोही परदारत परधन पर अपवाद ।

ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद ॥
जसमोहि गरुअ एक पर द्रोही ।
जो अवतरे भूमि भय टारन ॥

जगमहँ सखा निशाचर जेते । लक्षिमन हर्नाह निमिष मह तेते ॥
लक्ष्मणजी के शत्रु निशिचर लोग इसलिये भी हैं कि उनके गुरु विश्वामित्रजी के द्रोही निशिचर हैं और लक्ष्मण के पूर्वज मान्धाता एवं अनारण्य आदि से निशिचरों से सदा से शत्रुता रहती आई है ।
(ख) पूर्वकाल में वैवाहिक व्यवस्था ऐसी थी कि देवलोक की कन्या जाती तो सब लोकों में थीं परन्तु विवाह देवलोक या नरलोक में हो करती थी, ऐसे ही नागलोक की कन्या भी जा तो सब लोकों में सकती थी, पर ब्याह नागकुल या नर लोक में करती थी और नर की कन्या उर्ध्व एवं अधः लोकों में जा नहीं सकती परन्तु यह तो—

देखिउँ खोजि लोक तिहु माहीं ।

कहती है; अतः अनुमान से जाना कि यह निशिचर सन्तान है । "पिता रक्षति कौमारे" केअनुसार यदि पिताके आधीन होतीतो स्वयं पति न ढूँढती, इसका पिता ढूँढता । स्वयं को कुमारी कहती है, अतः किसी की माता भी नहीं हो सकती । तब यह निशिचर की ही भगिनी है ।

शंका—११

खरदूषण के साथ चौदह हजार राक्षस-निशिचर थे

आवा निशिचर कटक भयंकर ।

तब उन्हें प्रेत और पिशाच क्यों कहा गया ?

"सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥"
"लगे कटन विकट पिशाच ।"

"छन महँ प्रभु के शायकन काटे विकट पिशाच ॥"

(प० घनेश्वर प्रसाद शर्मा रेड़ा रायगढ़

समाधान

कीन्ह पंडिताई प्रकट प्रेत पिशाचन मारि ।
आनन्दित सुर मुनि कहत जै जै जै धनुधारि ॥

उपसर्ग पूर्वक इण् गतौ धातु में क्त प्रत्यय लगने से प्रेत शब्द की निष्पत्ति होती है । प्रेत एक भोग योनि विशेष है जो पापी मानव को मरने के बाद प्राप्त होती है ।

प्रेतः प्राण्यन्तरे मृतः । (अमर कोष)

प्रेतो भूतान्तरे पुन्सि मृते स्याद्वाच्यलिङ्गकः । (मेदिनी)

'वाचस्पत्यम्' में किन किन कर्म कर्ताओं को प्रेत कहा जाता है बड़े विस्तार से बताया गया है, उसके सैकड़ों उद्धरणों में से कुछ ये हैं—

ब्रह्मस्वं च स्त्रीधनानि लोभादेव हरन्ति ये ।
बलेन छद्मना चापि धूर्ताश्च परवञ्चकाः ॥
व्याधाचरणसम्पन्ना वर्णादिधर्मवर्जिताः ।
सर्वदा मादकद्रव्यपानरता हरिद्विषा ॥
गवां भूमेश्च हर्तारो तथा ये प्राणिहिंसकाः ।
प्रेतराक्षस पैशाच्यतिर्यग्वृक्षकुयोनिषु ॥
अन्तरिक्षचरा ये च भूत प्रेत पिशाचकाः ।
राक्षसा ये कृते गणः ॥

मांसाहारी मनुष्य भी पिशाच है--

पिशितं मांसं अमरः हैमश्च)
पिशितं = मांसं आचामति इति पिशाचः ।

निष्कर्ष यह कि मांसाहारी मनुष्य, राक्षस, प्रेत और पिशाच पर्यायवाची होनेसे खरदूषणादि राक्षसों को प्रेत और पिशाच भी कहा गया है ।

शंका-१२

मानस में कभी तो यह कहा जाता है कि
"अपराधिहु पर कोप न काऊ।" "खेलत खुनिस न कबहूँ" देखी।"
और विनय पत्रिका में भी आता है कि—
कहत राम विधुबदन दिसौहैं सपनेहु लख्यो न काऊ।
तथा कभी बताया जाता है कि—
कोप्यो समर श्रीराम। (अरण्यकांड २०।२)
तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा।
और कबितावली में आता है कि—
कबहूं रिसि आइ कहैं हठि कै० ॥
आदि दोनो परस्पर विपरीत बातों का समन्वय कैसे हो सकता है ? (रामगोबिन्द पाँडेय; रामायणी, गया)

समाधान

है हे सिया तव पायन में यह क्रोध नहीं करुणा की ललाई।
शशि सूर नहीं मणि भूरि नहीं तम नाशत है नखकी द्युति हाई ॥
याते जबै नखदर्श करै सुर नेकहु ना पलकै झपकाई।
बहिरन्तर नित्य प्रकाशि हरै तम, जन्म 'कुमार' करै सफलाई ॥
रिसिआना दो तरह का होता है।

(१) अपराधी पर जो वास्तविक रिसानि वह क्रोध है।

(२) दूसरा स्नेही पर ऊपर से देखावा का क्रोध जिसे प्रणय कोप कहा जाता है। यथा—
केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निबारई।
तुलसी नृपति भवतव्यता वश काम कौतुक लेखई ॥

"अपराधिहु पर कोप न काऊ' की बात यह है जो श्रीराम जी का अपना अपराध कर देता है उसपर कभी कोप नहीं करते

यही महर्षि जी भी कहते हैं कि-

कथं चिदुपकारेण कृतेनंकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणाँ शतमप्यात्मवत्तया ॥ (वा.रा.)

और--"तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा ।"

"विश्व द्रोह रत यह खल कामी ।"

वह क्रोध विश्वद्रोही पर था, अपने कारण नहीं । विन पत्रिका में वास्तविक रिसानि का न होना कहा गया है अ कवितावली में प्रणय कोप की बात है। वास्तव की रिसान में जि पर रिसाया जाता है उसे भय और दण्ड का कष्ट होता है, पर प्रणय-कोप में स्नेही की रिसानि देखकर आनन्द होता है त तो कवितावली में 'मात सबै मन मोद भरैं ।' कहा गया है अतः दोनों रिसानि दो तरह की होने से उसमें किसी तरह न विपरीतता नहीं है।

शंका-१३

बन में श्रीरामजी ने श्रीसीता जी को अग्नि प्रवेश करा व मायासीता के हरण पर विरह का अभिनय किया; उससे लक्ष्म जी पर कितना दबाव पड़ा होगा जो-

गुरु पितु मातु न जानीं काहू ।

कहकर सर्वात्मभाव से पूर्ण समर्पित थे, उनके साथ इतना दुरा क्यों, यदि संकेत से उन्हे बता दिये होते तो क्या हानि होती २३।७।१९७२ (कान्हा पुजारी, रामश्याम मित्र मंडल, नन्द गांव

समाधान

विकसित कंज पुष्प करकंज माहि फेरैं,
राघव के बाम अंक राजति रहति हैं।
पूर्णचन्द्रबिम्बमुख उपमा न आवै कछु,

महाराज रामबन्दि बिभव लहति हैं ॥
मातु जिमि पुत्रन को सुख देति बिश्ब सबै,
देवनारि घेरि सदा सेबन चहति हैं ।
तत्त्व ज्ञानमयी सीय हृदय ',कुमार'' ध्यावैं,
श्रीविदेहनन्दिनीजू दाया के ढरति हैं ॥

श्रीरामजीने मनु से कहा था कि–
अंशन सहित देह धरि ताता ।
करिहौं चरित भक्त सुख दाता ॥

और सामूहिक ब्रह्मस्तुति पर भी यही कहा था कि––
अंशन सहित मनुज अवतारा ।
लैहौं दिनकर बन्श उदारा ॥

× × ×

तिनकेगृह अवतरिहौं जाई ।
रघुकुल तिलक सो चारिहु भाई ॥

अंश के सम्बन्ध में मनु जानते हैं कि––
उपजहि जासु अंश ते नाना ।
शंभु बिरंचि विष्णु भगवाना ॥

नाना त्रिदेव उपजाने वाले अंश भरत् लक्ष्मण और शत्रुघ्न (विस्तार से देखिये मेरा 'मानस सिद्धान्त' प्रथम भाग) ांश गह कि एकही ब्रह्म चार रूप से अयोध्या में अवतीर्ण हुआ । यही बाल्मीकि और व्यास ने भी कहा है–ध

गो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मनं चतुर्विधम् (वा०रामा० १।१५।२१

ास्यापि भागवानेप साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धाऽगात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ (भाग० ६।१०।२)

जिस त द श्रीसीताराम हैं तो "गिरा अर्थ जल बीचि सम"

अभिन्न परन्तु लोकलीलार्थं पति-पत्नि रूपेण दृष्ट हैं; उसी तर श्रीरामजी लोक लीलार्थं चार भाई के रूप में दृष्ट हैं। इसी चारों भाइयों में तात्त्विक अभेद होने से किसी का कोई कार्य पर स्पर में किसी से अज्ञात नहीं रहता। जैसे सीताजी—

पिय हिय की सिय जाननि हारी।

हैं, वैसे लक्षमण जी भी-

लखन लखेउ प्रभु हृदय खँभारू॥

अतः लक्ष्मण के न रहने पर सुनहु प्रिया · · · से लेक 'अनल समानी' तक जो चरित्र सीतारामजीने किया था उन मम को वहां न रहते हुये भी लक्ष्मण जी जान गये। इसीसे लिख गया कि-

लछिमनहू यहि मरम न जाना।
जो कुछ चरित रचा भगवाना॥

यहीं कारण है कि सीता हरण पर लक्ष्मण जी कभी दुः नहीं हुये थे। और श्रीरामजी भी दुःखी विरही होने का नर नाट तब करते थे जब लक्ष्मणजी के अतिरिक्त अन्य कोई देखने सुन वाला वहाँ होता था। और जब अकेले लक्ष्मणजी ही होते थे त

"बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥
फटिक शिला अति शुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहां द्वौ भाई।
कहत असुज सन कथा अनेका। भक्ति विरति नृप नीतिअनेका॥

इस तरह पूर्वापर की संगतिपूर्वक विचार करने पर आपक शंका का समाधान सहज में हो जाता हे।

शंका १४

श्रीलक्ष्मणजी ने कुटिया छोड़ने पर किस मंत्र से रेखा खींच था जिसको रावण जैसा महापंडित भी न लांघ सका?

(दलाल भँवरलाल लड़ा, भूपालगंज, भीलवाड़ा

समाधान

श्रीतुलसी तुलसी सरिस, पावन करन निरोग ।
सबहि सुखद तजि अवन पर, ताते नम सब लोग ॥

अथर्ववेद में वर्णित है कि श्रीलक्ष्मण जीने जो रेखा खींची
। उसका प्रभाव था कि—

सर्वो वै यत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम् ॥
(अथर्ववेद कांड ८ सूक्त २ मंत्र २५)

। इदं ब्रह्म = जहां पर यह ब्रह्मात्मक
रिधिः क्रियते = राक्षस पिशाचादि निवारक रेखा खींच दी जाती है।
व नायकम् = यह परिधि समस्त जीवमात्रकी रक्षिका होती है।
। वै = उस रेखाके भीतर निश्चय ही ।
: अश्वः पशुः = गाय और घोड़ा आदि सभी पशु तथा
षः जीवति = मनुष्य आदि सभी प्राणी जीते (सुरक्षित) रहते हैं।
(यथा) परिधिः = जैसे यज्ञ में अग्नि के चारो और रेखा खींची जाती है वैसे ही
परिधिः क्रियते = ब्रह्मके कलांशावतार लक्ष्मणजीने श्रीसीता जोकी कुटिया के चारो तरफ रेखा खींच दिया।

"सभी प्राणी सुरक्षित रहते" यह तो हुआ उस रेखा का
ाव। रेखा खींचते समय श्रीलक्ष्मणजी ने निम्न मंत्र पढ़कर रेखा
अभिमंत्रित किया था अर्थात् वन दिशि देव सबको सौंपा था—

रत्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः;
म्रिभिर्ऽतोऽति जीवो माते हासिपुरसवः शरीरम् ॥(अथर्व८।२।२६)

परि - यह परिधि (लघुरेखा)
म्रिभिः - प्रबलमंत्रशक्ति द्वारा

सबन्धुभ्यः = सपरिवार
समानेभ्यः = हमारे शत्रुओं के समस्त
अभिचारात् = हानिकर प्रयोगों उपायों से
त्वा (त्वाम्) पातु = आपको सुरक्षित रखे = रक्षा करे ।
तेअसवः = आपके प्राण
अतिजीव = बहुत काल तक जीवित रहें ।
वा अमृतः = अथवा कभी मरे ही नहीं अर्थात्
शरीरम् = शरीर को कभी भी
मा हासिषुः। = न छोड़ने वाले हों ! अर्थात् परिधि के भीतर किसी प्रकार का भय न रहेगा ।

वेदमंत्र जोरसे बोला जाताही है। श्रीलक्ष्मणजीने उच्चस्वर मंत्रपढ़ाथ

महापण्डित रावण वेदमंत्र का माहात्म्य और उसकी शक्ति को सुपरीक्षित रूप से जानता था, इसीसे उस मंत्रित रेखा के लांघने का दुस्साहस उसने नहीं किया था।

शंका १५

बन दिशि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन शशि राहू ॥

लक्ष्मणजीने जब बनके और दिशाओं के समस्त देवताओं को सौंपा था, तब सभी देवताओं ने थाती–सीताजी का संरक्षण क्यों नहीं किया ? यह ठीक है कि बे सब रावण से निर्बल थे ! तो भी संरक्षण का प्रयत्न करना तो धर्म था। (मंगला प्रसाद सगरा)

समाधान

सुन्दर श्याम हृद शुचि दर्पण मानो महा मघवा मणि राजे
श्रीवत्सांक सुहीरन हार सतारन सीय मुखेन्दु विराजे ॥
त्यों सिय गोद लसैं रघुनन्दन दर्पण सीय कपोल सुभ्राजे ।
जहां प्रतिबिम्बित आस्य अनिन्दित रामकुमार हृदै मधिराजे ।

जिन मनु के सम्बन्ध में वेदभगवान ने मुक्तकण्ठ से कहा है कि--

मनुर्वैयत् किञ्चावदत् तद्भेषजमासीत् ।

(यजुर्वेदीय काण्वसंहिता ११।५।९)

उन्हीं मनुमहाराज का निर्णय है कि--

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।। मनुस्मृति
जो हठि राखै धर्म को तिहि राखै करतार ।।

श्रीसीताजी यदि लक्ष्मणजी द्वारा अभिमंत्रित रेखाके भीतर ही रहती और तबयदि रावण हरनेका प्रयास करता तो उस समय बन एवं दिशाओंके देवतागण उनकी रक्षा का प्रयत्न करते। क्योंकि श्रीलक्ष्मणजी ने रेखा खींचते हुये मन्त्र द्वारा ही बन तथा दिशा के सब देवताओं को सौंपा था। उससमय रावण कुटिया के समीप ही छिपा था, अतः परिधि खींचते देखा और मन्त्र बोलते सुना था। रावण वेद का धुरंधर विद्वान था, वैदिक मन्त्रों का प्रभाव एवं उनकी मर्यादा जानता था। सिद्ध किये हुये वैदिक मन्त्रोंकी अवहेलना का भयंकर परिणाम क्या होता है, इससे वह अनभिज्ञ न रहा होगा। इससे रावणने उस अभिमन्त्रित रेखा का उल्लंघन नहीं किया--

रामानुज लघुरेख खँचाई। सो नहि लाँघ्यो असि मनुसाई ॥

जब श्रीसीताजी ने (आगे को लीला के लिये) मर्यादा को भंग किया अर्थात् रेखाका उल्लंघन करदिया, तब धर्मच्युत होने से बन-दिशि देवताओं से रक्षा न प्राप्त कर सकीं। और--

संग लाइ करिनी करिलेहीं। मानहुं मोहि सिखावन देहीं ।।
राखियनारि यदपि उरमाहीं। युवती शास्त्र नृपति वशनाहीं ॥

का लक्ष्य श्रीजानकीजो के रेखा लाँघने से ही है।

शंका–१६

मारीच ने रावण से कहा था कि—

जिहि ताड़का सुबाहु हति खंड्यो हर कोदंड ॥

वह कोदण्ड–शिवधनुष, पिनाक, अजगव आदि नामों से विख्यात धनुष, जिसे श्रीरामजी ने जनकपुर में खण्डित किया था क्या व हड्डियों का था ? वह किसकी हड्डी थी ? और उसकी प्रत्यंच किस चीज की थी ।

(श्री चैतन्यदेव पाण्डेय, पीपरझला, महौली, सीतापुर, उ०प्र०

समाधान

श्रीसीताहृदये हारं सीताबाहुविभूषितम् ।
सीताप्रेमसुधामग्नं वन्दे सीतामनोहरम् ॥

१– किम्बदन्ती तो हड्डियों से ही बनने की है, परन्तु प्रमाण दूसरे तरह के भी मिलते हैं । देखिये (दक्षिण मत) महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय १४१—

युगान्तरे महादेवि कण्वो नाम महामुनिः ।
स हि दिव्यां तपश्चर्यां कर्तुमेवोपचक्रमे ॥१५॥
तथा तस्य तपो घोरं चरतः कालपर्ययात् ।
वल्मीकं पुनरुद्भूत तस्यैव शिरसि प्रिये ॥१६॥
धरमाणश्च तत्सर्वं तपश्चर्यां तथा करोत्
तस्मै ब्रह्मा वरं दातुं जगाम तपसार्चितः ॥१७॥
दत्वा तस्मै वरं देवो वेणुं दृष्ट्वा त्वचिन्तयत् ।
लोककार्यं समुद्दिश्य वेणुनानेन भामिनि ॥१८॥
चिन्तयित्वा तमादाय कार्मुकार्थेन्ययोजयेत् ।
धनुषी द्वे तदा प्रादाद् विष्णवे मम चैव तु ॥१९॥
विष्णोर्मम च सामर्थ्यं ज्ञात्वा लोकपितामहः ।

पिनाकं नाम मम चापं शाङ्गं नाम हरेर्धनुः ॥२०॥
तच्च सोमाय निर्दिश्य ब्रह्मलोकं गतः पुनः ॥२१॥

वन में महर्षि कण्व के तप का फल वरदान देने ब्रह्मा गये तो (शायद महर्षि के तप प्रभाव से जमा हुआ) एक दिव्य बांस देखकर (विश्वकर्मा से) दो बड़े बड़े और एक छोटा धनुष बनवाया बड़ा शिव को पिनाक और विष्णु को शाङ्गं दिया छोटा गाण्डीव सोम को दिया (जो अग्नि के द्वारा अर्जुन को मिला)।

बाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ७५ में परशुराम ने श्रीरामजी से बतलाया कि विश्वकर्मा ने समानसार (तुल्य शक्तिशाली) पिनाक और शाङ्गं बनाकर शिव और विष्णु को दिया था।

इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे दिव्ये लोकाभिपूजिते ।
दृढ़े बलवती चैव सुकृते विश्वकर्मणा ॥११॥
अनुसृष्टं सुरैरेकं त्र्यम्बकाय युयुत्सवे ।
त्रिपुरघ्नं नरश्रेष्ठ भग्नं काकुत्स्थ यत् त्वया ॥१२॥
इदं द्वितीयं दुर्धर्षं विष्णोर्दत्तं सुरोत्तमैः ।
तदिदं वैष्णवं राम धनुः परपुरञ्जयम् ॥१३॥
तुल्यसारं च काकुत्स्थ रौद्रेण धनुषा त्विदम् ॥१४॥

सम्भवतः किसी पौराणिक आधार पर किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि ब्रह्मर्षि दधीच की छाती की हड्डियों से वज्र और पिनाक बना था एवं पीठ की हड्डी मेरूदण्ड शृंग से शाङ्गं बना था और पीठ की बची हड्डियों से गाण्डीव बना था। विश्वकर्मा ने बनाया था।

आजभी मिथिलामें जनकपुर से चौदह मीलकी दूरी पर धनुषाक्षेत्र में सैकड़ों फीट लम्बा एवं सहस्त्रों टन भारी जो पिनाक का आधा भाग रखा है—पूजित होता है। वह भी हड्डी का ही

है कोई भी जाकर देख सकता है इससे सुप्रसिद्ध किम्बदन्ती भी सार मालूम होता है ।

२–क– पिनाक की प्रत्यञ्चा नागराज बासुकी बना करते थे । यथ

घनुरायतभोगबासुकिज्या वदनग्रन्थिविमुक्तबह्निशम्भुः ।

(किरातार्जुनीयम् १३।१०

ख– एक बार भगवान शकरजी ने अपने शूल को ही झुका पिनाक की ज्या प्रत्यञ्चा वना लिया था ।

त्रिज्ञातरूपः स तदा तपः सिद्धोऽथ धन्विना ।
ज्ञात्वा शूलं च देवेशः पाणिना समनामयत् ॥१७॥
आनतेनाथ शूलेन पाणिनाऽमततेजसा ।
पिनाकमिति चोवाच शूलमुग्रायुधो प्रभुः ॥१८॥

(महा० भा० शा० प०

शिवजी ने अपने त्रिशूल को झुकाकर पिनाक का स्थान दिया था जब अजगव पिनाक जनकपुर में टूट चुका था । अ महाभारत कर्ण पर्व ३४।३६ में जो शिव धनुष को सम्वत्सर त प्रत्यञ्चा को सावित्री का बनना बताया गया है वह तो अतिशयो पूर्ण रूपक मात्र है ।

शंका–१७

महानवेदज्ञ एवं नीतिविशारद होकर भी रावण ने श्रीराम से वैर क्यों किया ? वैर भी घृणित रूप से, मुक्ति के लिये दूस उपाय क्यों नहीं किया ? (रामायणी राजीवलोचनदास

समाधान

बैर भाव सुमिरत खलन गुनि हरि शुभगति देत ।
जो कुमार कर प्रेम नित तिहि आपन करि लेत ॥

रावण तमः प्रधान था, उसका स्वभाव एवं आचरण तम

गात्मक था उत्तमकुल प्रसूत एवं महाविज्ञानी होते हुये भी कदा-ारी था। जैसे पौधे वनस्पति आदि में खूब = उचित मात्रा में त्तम खाद पानी देने से उसकी सर्वतोमुखी उन्नति होती है परन्तु—

जाको जौन स्वभाव छुटै नहि जीव सों।
नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सों॥ भ०मा०टि०,

जैसे—पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्॥ (पञ्च तन्त्र)
सीतरह उत्तम कुल एव विद्या आदि तमोगुणियों के तमको और ो बढ़ाता है विख्यात है कि—

सरसोविपरीतश्चेत् सरसत्वं न मुञ्चति।
साक्षराविपरीतश्चेद्राक्षसा किल जायते॥
(सुभाषित रत्नभाण्डागार)

तमोगुणियों का तम तो एकमात्र सत्संग करने से ही नष्ट होता है, जैसा कि श्रीजानकीजी ने रावण से ही कहा था कि—

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥
(वा० रा० ५।२१।९)

रावण कभी सत्संग नहीं करता था और विना सत्संग के किसी की बुद्धि सात्त्विक नहीं हो सकती—

मति कीरतिगतिभूतिभलाई। जबजिहिजतनजहाँजिहिपाई।
सोजानबसत्संग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

परन्तु जो कभी कभी—

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः (भाग० १।१।१)
विधि प्रपंच गुन अवगुन साना॥

के अनुसार रावण को यदि किंचित् क्षणार्धमात्र के लिये सत्त्वगुण उदय हो जाता था वह स्थाई नहीं रहता था।

शंका १८

मन महँ चरन बन्दि सुख माना ।

श्रीसीताजी की चरणवन्दना करने वाले परमभक्त रावण ने

"सुनत बचन पुनि मारन धावा ।

"सीतहिं बहु बिधि त्रासहु जाई ॥"

श्रीसीताजी को बहुत कष्ट दिया, क्यों ?

(पुजारी श्रीरामधारीदासजी मटिहानी)

समाधान

श्रीजनकराजकन्ये मातः तुम्हारी जय हो ।
त्रयलोक्यपूज्य धन्ये मातः तुम्हारी जय हो ॥

रावण बाममार्गीयशाक्त पंच मकारी कौल था । कौलो में ऐहिक भोग ही सबकुछ होता है । कौलमार्ग सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन रुद्रयामलीय देवी रहस्य में देखा जा सकता है । कौलों का विख्यात सिद्धान्त रुद्रयामल में है कि—

स्वकोयां परकीयां वा प्लावयेत् परयोषिताम् ।
मातृयोन्यां परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु ॥

पर स्त्री को चाहे जैसे प्राप्त करके पहले उसे मानसिक प्रणाम करे

आदौ नमस्क्रियां कुर्यात् कुलजां वीक्ष्य कुलेश्वरः ॥

परन्तु जबतक वह परस्त्री पूर्णतया आत्मसमर्पण न कर देवे तबतक—

तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यं विप्रियं तथा ।
न तु कार्यावधिः कोपं मनसापि समाचरेत् ॥
यदि चेत् स कृतं कोपं सकुलं च विनश्यति ।

श्रीसीताजी ने रावण को कोपित करने के लिये ही

सुनु दशमुख खद्योतप्रकाशा । कबहुँकि नलिनी करइ विकासा ॥

आदि कहा, जिसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर मारने दौड़ा ।

वामाचार कौलाचार के नियमको मंदोदरी जानती थी इसीसे उसने रावण का चरण पकड़कर समझाया। परन्तु बात तो बिगड़ गई और तभी मन्दोदरी सीताजी को निशिचर कुलकी कालरात्रि मानने लगी। जो लोग शास्त्रज्ञों का सत्संग नहीं करते, शास्त्रज्ञों के लेख नहीं पढ़ते स्वयं शास्त्रों से जान पहचान नहीं रखते वे रावण को श्रीसीताजी का भक्त कहकर अपने श्रोताओं को पथ भ्रष्ट किया करते हैं।

शंका–१६

श्रीसीताहरण के समय जटायु कहां थे ?

(शंकरानन्द तिवारी 'प्रतिवादिभयंकर)

समाधान

श्रीश्येनीनन्दनं वीरमरुणानन्दबर्द्धनम् ।
वात्सल्यरससंसिक्तं श्रीसम्पात्यनुजं नुमः ॥

इस शंका का समाधान महाकवि भवभूति ने महावीर चरित नाटक में किया है। वहाँ लिखा है कि पक्षहीन सम्पाति अपने निवास स्थान मलयगिरि की कन्दरा में रहते थे। खरदूषणादि के निधन के बाद जनस्थान को राक्षसों से शून्य देखकर जटायु जी अपने बड़े भाई सम्पाति से मिलने मलय गिरि गये तो जटायु के वेग से उड़ने के कारण मलयगिरि के आस पास प्रकृतिमंडल में जो विशेषता हुई, उसका वर्णन इन शब्दोंमें भवभूतिजी ने किया है :

पर्यायात् क्षणदृष्टनष्टककुभः सम्वर्तविस्तारयो—
र्नीहारीकृतमेघमोचितधुतव्यक्तस्फुरद्विद्युतः ।
आरात् कीर्णकणान् कणीकृतगुरुग्रावोच्चयश्रेणयः
श्येनेयस्य वृहत्पतत्त्रधुतयः प्रख्यापयन्त्यागमः ॥
दूरोद्वेलितवाडवस्य जलधेरुल्लोलभिन्नाम्भसो
रन्ध्रैरापतितेन वेगमरुता पातालमाध्मायते ।

यद् वैकुण्ठबराहकण्ठकुहरस्फारोच्चलद् भैरव—
ध्वानोच्चण्डमकाण्डकालरजनी पर्जन्यवद् गर्जति ॥
(महावीरचरितम् ५:१,२

इन दोनों पद्यों का सुन्दर पद्यानुवाद श्री अवध वासी उपनाम लाला सीताराम बी० ए० ने इस तरह किया है—

खोलें दिशान समेटत वार पसारि आकाश छिपावत है ।
मेघन सो बरसावत नीर छुटी बिजुरीहिं हिलावत है ॥
टूटत शैल प्रहार चहूँ दिशि पाथर खण्ड उड़ावत है ।
श्येनीं के पुत्र जटायु को आगम हीलत पख जनावत है ॥
लागे प्रचण्ड बयारि तरंग उठै भड़कै जल बाढ़त ज्वाला ।
छेदन वायुके वेग से जाय हिलाय दियो धुनि व्यापि पताला ॥
बिश्व सम्हारे जे आदि बराह भयो तिनके मुख शब्द कराला ।
गर्जत है सोइ मेघ समान लगे जब लोक संहारन काला ॥ (भू

इन निमित्तों को देखकर सम्पाति ने अनुमान किया कि

सम्पातिः-नूनमद्य वत्सो जटायुरभिवादनाय मलयकन्दरकुलायमुपर

अर्थ-अवश्य आज चिरञ्जीव जटायु प्रणाम करने आ रहा है

तदयमार्योमन्वन्तरपुराणो गृध्रराजः सम्पातिः ।

अर्थ-दूर से ही सम्पाति को देखकर जटायु कहने लगे कि श्वेतवाराहकल्प के प्रथम मन्वन्तर में उत्पन्न होने वाले ब पुराने (वयोवृद्ध) गृद्धराज सम्पाति वह है । पास जा प्रणाम किया तो गले मिलकर सम्पात्ति नें पूछा-

"वत्स जटायो काल विप्रकर्षात्, मन्दीभूतपितृशोको रामभद्र

भाई जटायु यह तो बताओ बहुत समय बीत जानेसे श्रीरा भद्र का पितृ-मरण का शोक कम तो हो गया ? जटायुने बताया

तस्य विद्यातपोवृद्धसंयोगः स्वा च धीरता ।

न्यायोरक्षाधिकारश्च दौर्मनस्यं व्यपोहति ॥५।७॥

एक तो श्रीरामभद्रजी स्वयं धीर स्वभाव वाले हैं। दूसरे ातपो वृद्ध मुनियों का सत्संग और तीसरे आरण्यकीय प्रजा रक्षा का दायित्व इन सबने पिता मरण जन्य शोक को भुला ा। इसे सुनकर सम्पाति ने कहा कि–

तृप्तैर्विराधमांसानां गृध्रैरावेदितं हि मे।
चित्रकूटाद्यदारामः शरभङ्गाश्रमं गतः ॥ ८ ॥

श्रीरामजी चित्रकूट से शारभंगाश्रम को जा रहे थे रास्ते में ाघ को मारा था, शरभंगाश्रम से सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम पर ऐसा उन गीधोंने मुझसे बताया था जो कई दिनो तक विराध विशाल शरीर का मांस खाकर तृप्त हुये थे। जटायु ने कहा समय श्रीरामभद्रजी जन स्थान पंचबटी में हैं। वहां अभी निकट भूत में–

तासां कर्णनासोष्ठकर्तनेन न्यवीविशत्।
दशाननतिरस्कारप्रशस्तिमिव लक्ष्मणः १२ ॥

इसका अनुवाद गोस्वामी जी ने रा.च.मा. में कियो है–

लछिमन अतिलाघव सो नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहँ मनहुं चुनौती दीन्ह ॥

ैनैव रामभद्रेण–

चतुर्दशसहस्राणि चतुर्दश च राक्षसाः।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः ॥ १३ ॥

यह सुनकर सम्पाति ने कहा कि तबतो रावण से भयंकर र बँध गया तुम जल्दी पंचवटी जावो मै भी मध्याह्नकालिक न्ध्या करने समुद्रतट जाता हूँ–

जटायु वहां से चले तबतक सीताहरण हो चुका था। रास्ते

में रावण को धर दबोचा। आगेकी बात मेरे जयीजटायु पुस्तकमें प

शंका २०

चोचन मारि बिदारेसि देही। दण्ड एक भइ मुर्छा तेही॥

जब रावण को एक दण्ड = चौबीस मिनट तक मुर्छा थी तो इस बीच में सीताजी भागी क्यों नहीं जबकि वैसी स्थिति साधारण चाल से भी तो एक माइल चला जा सकता है। य नर नाट्य कहा जाय तो ऐसे समय एक क्षत्राणी राजकुमारी लिए तो शत्रु का अस्त्र लेकर शत्रु को मार देना उचित था अथ कहीं भागकर छिप जाना ही ? (डा० राजेन्द्र प्रसाद सिन्ह,

समाधान

मोदप्रदां प्रमुदकाननमध्यसंस्थां,
यूथेश्वरीं युवति मंडलमण्डितां याम्।
मन्दारपुष्पचयसंस्थितकेलिदक्षां,
नित्यं नतोऽस्म्यखिल सौम्यप्रदां सुसीताम्॥

श्री गोस्वामी जी ने लिखा है कि माता पिताके सामने संत अपने लिए सदैव निश्चिंत रहती है।

तुलसी रहत निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के। (वि.प
ओर अबला होने से खासकर कन्याओं के सम्मान एवं रक्षा पर मा पिता का तथा पुत्रबधू के सम्मान एवं रक्षा का ध्यान सदैवसे सा ससुर का अधिक रहता है। यहां श्री गीधराज ने—

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं यातुधान कर नासा

कहकर श्रीसीताजी को पुत्री कहा, एवं दण्डकारण्य में अ ही श्रीरामजी से जैसे जटायु जी से भेंट हुई तो-जोरी प्रीति दृढ़ा और दशरथ के मित्र होने के नाते श्रीरामजीभी—

दशरथ से दशगुण अधिक सहित तासु कर काज॥ (दोह

"(सुनहु लखन खगपतिहिं मिले बन मैं पितु मरन न जान्यो।"
"देखहु आप सुवन सेवा सुख मोहिं पितु को सुख दीजै ॥(गी०)

सदाही पितातुल्य मानते थे और उनकी उपस्थिति में इतना निर्द्वन्द्व रहते थे कि जिसका वर्णन स्वयं गीतावली की उपर्युक्त पंक्तियों में वर्णन करते हुए "बड़ो पक्ष आजु मान्यो ॥ कहा है। और इस समय श्रीसीताजी इनकी बीरता देख रही हैं कि वृद्ध होते हुए भी एक झपट्टे में महादुर्धर्ष बीर रावण की चोटी पकड़ कर झटका दिया तो वह रथ से अलग गिर कर बेहोश हो गया-

घरि कच विरथ कीन्ह महि गिरा।

परन्तु सच्चे बीर होने के कारण श्री गीधराज जी मूर्च्छित शत्रु के ऊपर प्रहार करके उसे मार डालने की चेष्टा नहीं करते और सीताजी सहित भाग भी नहीं जाते प्रत्युत-

सीतहिं राखि गीघ पुनि फिरा।

इसी तरह पूरे प्रकरण पर विचार करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि श्रीसीताजी उस समय श्वसुर एवं पिता तुल्य बीरवर श्रीगीधराज जी की संरक्षकता में थीं-

जबकि गीधराज उन्हे एक जगह बैठा गये थे, तब यदि भाग जातीं तो श्री गीधराजजी पर प्रत्यक्ष रूपेण अविश्वास करना होता जोकि सर्वथा अनुचित था। तथा उस समय उस निर्जन बन में यदि आपके कथनानुसार भागतीं भी तो क्या उस दुर्धर्ष वीर रावण से त्राण पा जातीं। और श्रीसीताजी इतनी सुकुमारी थीं कि चौबीस मिनट में एक मील भी नही जा सकती थीं-

पुर ते निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दये मग में पग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पट सूखि गये मधुराधर वै॥ (कवि.)

बाल्मीकीय अयोध्या काण्ड के अनुसार तो श्रीसीताजी के ही कारण

श्रीरामजी दिन भर (वारह घन्टे) में केवल पांच कोश = दश मील ही चल पाये थे । तब भला सीताजी एक दण्ड मात्र में एक मील कैसे भाग सकती थीं मुख्य बात तो यही है कि उस समय श्रीसीता जी के भागने या शत्रु से लड़ने की चेष्टा करना भी पिता एवं श्वसुर स्वरूप श्रीगीधराज के प्रति अवहेलना एवं अविश्वास का द्योतक होता जोकि एक आर्य ललनाके लिये सर्वथा अनुपयुक्त होता

शंका—२१

काटिसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि अद्भुतकरनी ॥

जटायुजी ने कौन सी अद्भुत करणी किया ।

(रामभक्त कुँ० श्रीनिवासदास पोद्दार कलकत्ता)

समाधान

महाबली दशशीश कहँ चंगुल चोचन मार ।
तनु विदारिमूर्छित कियो धन्य सुअरुणकुमार ॥

एक बार जटायु की करनी पर किसी पत्रिका में एक सुन्दर लेख पढ़ा था पत्रिका और लेखक का नाम तो स्मरण नही रहा परन्तु लेख का भाव स्मरण हो आया अतः जटायु संबन्धी करनी को अपने ढंग से परिष्कृत रूप से दे रहा हूँ :

प्रश्न—करनी कहा जटायू केरी ?
उत्तर—वल प्रतापरिपु रोष बहु मृतकक्रिया उपकार ।
निशिचर नासव रनमरब करनी सुभग "कुमार" ॥

प्रायः इन्ही सात अर्थों में करनी शब्द का प्रयोग रामचरित मानस में हुआ है । इन सातों की चरितार्थता जटायु के चरित्र में पाई जाती है । जैसे— परशुराम ने कहा कि—

तुम हटकहु जो चहहु उबारा । कहि प्रताप बल रोष हमारा ।।

श्रीलक्ष्मण जीने इन तीनों को करनी कहा—

अपने मुख तुम आपनि करनी। भांति अनेक बार बहु बरनी ॥

श्रीजटायुजी में सातो की चरितार्थता-

१-बल-रावण बहुत बली था-

तव बल नाथ डोल इमि धरनी ॥

जासु चलत डोलत इमि धरनी । चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥

ऐसे रावण को-

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा ।

अतः (महि पछारि निज बलहि दिखावा ॥)

(२) प्रताप-रावण के प्रताप से-

तेज हीन पावक शशि तरनी । ऐसे प्रतापशाली रावण को-

चोंचन मारि बिदारेसि देही । दण्ड एक भइ मूर्च्छा तेही ॥

(३) रोष- धावा क्रोधवन्त खग कैसे ॥

सुनत गृद्ध क्रोधातुर धावा ॥

तबहि गीध धावा करि क्रोधा ॥

(४) मृतकक्रिया-यथा-भरत-

पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी ।

वैसे जटायु जी की-

तिहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम ।

(५) परोपकार- नाथ पवन सुत कीन्हि जो करनी ॥

नाथ काज कीन्हे हनुमाना ॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी ॥

जटायु जी में चरितार्थता-

राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़ भागी ॥

जल भरि नयन कहहि रघुराई । तात कर्म निज ते गति पाई ॥

पर हित बस जिनके मनमाहीं । तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

(६) निशिचर नाश–निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह
समुझि परी मोहि उनकै करनी। रहित निशाचर करिहैं धरनी॥
जटायु जी में चरितार्थता—
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं यातुधान कर नासा॥
(७) युद्ध में लड़ते-लड़ते प्राणत्याग—
जूझे सकल सुभट करि करनी। बन्धु समेत परेउ नृप धरनी
जटायु जी में चरितार्थता—
काटिसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी

हनूमान जी से भेंट होने के पूर्व जानकी जी ने जटायु जी का स्मरण करते हुए कहा था कि श्रीरामजी को मेरे हरे जाने की सूचना दे सकते थे; उन्हें रावण ने मार डाला, वृद्ध जटायु ने मेरे लिए बहुत पुरुषार्थ किया था—

हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत्।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः॥१८॥
कृतं कर्म महत् तेन मां तथाभ्यवपद्यता।
तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा॥१९॥ (वा.रा५।२

शंका–२२

कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी।

टुकड़ा पट बजनदार नही होता अतः भूषण भी बाँधा होगा, औ

तापस वेष जनक सिय देखी।

चित्रकूट में तपस्विनी वेष था, तब भूषण कहां से आया ?

प० रामरक्षित शुक्ल रामायण

समाधान

लखि तपस्विनी वेष सिय श्री अनुसुइया मात।
दिये दिव्य भूषण बसन नित नवीन सरजात॥

नुसुइयाजी ने--

व्य बसन भूषण पहिराये । जे नित नूतन अमल सुहाये ।।

यहां बहुबचन 'जे' बसन और भूषण दोनों के साथ है र्थात् कई वस्त्र और कई भूषण क्योंकि एक वस्त्रा स्त्री पुष्पिता ाल में ही होती है अन्य समय में कम से कम तीन बस्त्र तो रहते ो हैं । साड़ी, साड़ी के नीचे साया (पेटी कोट) अथवा लहँगा, ोढ़नी और वक्षावरण हो, सकता है कि साड़ी या ओढ़नी का टुकड़ा ाड़ कर उसी में किसी भूषण को लपेट कर फेंक दिया हो ।

शंका-२३

अशोक वृक्ष के नीचे रहने पर भी सीताजी का शोक क्यों नहीं दूर हुआ ? (पं०शम्भुप्रसाद तिवारी, कनवास भुवारा, शाहपुर)

समाधान

तर अशोक शोकित सियभारी । पवन तनय सब शोक निवारी ।।

अन्वर्थक नाम वो भगवत और भागवतों का ही है अन्य प्राकृत पदार्थों में नामानुरूप गुण हों ऐसा नियम नहीं है ।

अर्को स्फटिक सूर्ययोः । (अमरकोष)

अर्कोऽर्कपर्णे स्फटिके रवौ ताम्रे दिवस्पतौ ॥ (मेदनी)

अर्क (आक) मदार, अकौआ) के अनेक नामोंमें सूर्यके पर्याय-वाची अनेक नाम हैं तो भी अर्क में क्या भगवान् सविता के गुण प्रभाव हो सकते हैं ?

गुनी-गुनी सब कोउ कहै निगुनी गुनी न होत ।
सुन्यो कहूँ तरु अर्क ते अर्क समान उदोत ॥
(बिहारी सतसई ३५१)

इसी तरह धतूर क्षुप का एक नाम कनक भी है—

धत्तूरः कनकाह्वयः । (अमर, मुकुट, शब्दार्णव-कोष)

कनकं हेम्निपुंसिस्यात् धत्तूरे काञ्चनारे च । (मेदिनी)
राजत बृष जुग्हे सदा बहुरो कनक खजूर ॥
कनक धतूरे सों कहत कनक स्वर्ण सुखमूल ॥
(श्रीनन्ददासजी कृत अनेकार्थ दो. १२८

अर्थात् धत्तूर, कचनार और खजूर वृक्षोंको भी कनक कहा से उन वृक्षों से स्वर्णवत् काम नहीं किया जा सकता कहा भी है।

कनक धतूरे के कहे गहनो गढ़ो न जात ॥ सूक्ति सतस

यह तो नामार्थ हीन चार वृक्षों का उदाहरण है । अनेकों ऐसे और हैं, उनमें एक अशोक भी है । यद्यपि कि वह सर्व नामार्थ हीन नहीं है । वनौषधिचन्द्रोदय में लिखा है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को डेढ़ तोला अशोक की कोपल को खा लेने से साल तक शोक नहीं होता । अशोक वृक्ष के विभिन्न अंगों से अ औषधियों के योग से अशोकघृत, अशोकार्क, अशोकारिष्ट, अशो कसार, अशोकशर्बत, और अशोकावलेह, आदि अनेक पेटेंट औ धियाँ बनती हैं, जो स्त्रियों के अनेक रोगों को दूर करके उन शोक हरती हैं केवल अशोक वृक्ष के नीचे बैठने मात्र से किसी शोक दूर नहीं हो जाता । अतः सीताजी का भी शोक दूर नहीं हुआ । बादरायण सम्बन्धात् हनूमान जी के पहुँचने पर सीताजी का शोक श्रीराम गुणगाथा सुनने से दूर हुआ—

रामचन्द्र गुण बरनन लागा । सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥

किसी का कुछ नाम रखे बिना व्यवहार नहीं बनता इसलि कुछ न कुछ नाम रखकर व्यवहार चलाया जाता है यही कथ अशोक वृक्ष की भी है ।

शंका २४

जिहि बिधि कपट कुरंग सँग, धाइ चले श्रीराम ।

सो छवि सीता राखि उर, जपति रहति हरि नाम ॥

कई कथा वाचक कहते हैं कि रामजी कपट कुरंग मारीच पीछे दौड़े तो दोनो पांव का तलवा दूरसे दिखाई देता था की रेखा का ध्यान सीताजी करती थीं परन्तु दोहा में जिहि ध और सो छबि आया है इसका अर्थ क्या है। पीछे से चरण ा देखना है ? (रामदास—'झाड़ूराम, नैला, विलासपुर)

समाधान

कंज तरणि कुल के तरणि तकि तिरछे तिय काँहि ।
माया मृग मारन चले माया पति मम पाहि ॥

श्रीगोस्वामी जी ने रामचरित मानस में कई ऐसे प्रसंगों का त किया है जिसका स्पष्टीकरण उनके अन्य ग्रन्थों से ही ा है। यही समझकर मैंने "मानस सिद्धान्त" में लिखा है कि–

गीत कवित्त दोह्रावली विनयादिक सब ग्रन्थ ।
मानस भावहि लखन को तुलसी रचे सुपन्थ ॥

इसके उदाहरण स्वरूप इस शंका का समाधान हैं। इस ा के समाधान के अतिरिक्त अन्य भी कई प्रसंग हैं। कपट ग के संग धाकर चलने की विधि बरवै रामायण और कविता- ो में बड़े सुस्पष्ट शब्दों में लिखा है। यथा—

जटा मुकुट कर शर धनु संग मारीच ।
चितवनि बसति कनखियनि अखियनि बीच ॥ ३०
(बरवै रामायण अरण्यका० ३०)

इसका और सुस्पष्ट वर्णन गीतावली में है—

प्रिया बचन सुनि बिहँसि प्रेम बस गवहिं चाप शर लीन्हे ।

× × × × × ×

जोहति मधुर मनोहर मूरति हेम हरिन के पाछे ।

धात्र/नि नवनि विलोकनि विथकनि बसै तुलसी उर आछे
बहुत स्पष्ट वर्णन कवितावली में है।

हेम कुरंग के संग शरासन सायक लै रघुनायक धाये। कैसे धाये
प्रेम सो पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै चले लै चितचोरे
श्याम शरीर पसेऊ लसै हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे।
लोचन लोल चलै भृकुटी कलकाम कमानहुं सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग निषंग कसे धनुसों शर जोरे।

यह पद कवितावली अरण्यकांड का दूसरा होना चाहि
कवितावली एक संग्रह ग्रंथ है; जिसमें गोस्वामीजी के लिखे पु
कर कवितों का संग्रह है, साथही कुछ दूसरों के कवित्त भी स
लित हैं परन्तु यह संग्रह अवश्य ही गोस्वामीजी का किया नहीं
गोस्वामीजी के बाद अन्य किसी ने अपनी सूझ बूझ के अनुसार
लगाकर संकलन कर दिया है। जो कहीं-कहीं उलटा-पलटा
गया है। जैसे रामचरित मानस में जनक के दूतोंने श्रीदशरथ
से "सुनहु महिपति मुकुट मणि" से 'अब न आंखि तर आवत को
(१२९। से १२९।५) तक धनुर्भंग और परशुराम पराजय
कथा बताई थी। और कवितावली का 'कालकराल नृपालन
सिधाये (क०१।२१) यह पद मानस कथित दूत बचन र
प्रिय लागी' का संक्षिप्त रूप है। अथवा "सुनि सरोष भृगुनायक
से "करि बहु विनय गमन बन कान्हा" का सुस्पष्ट रूप है अ
इस पद के बाद संग्रह का सत्रहवाँ पद "दूलह श्रीरघुनाथ....
पल टारति नाहीं।" होना चाहिये और उस "कालकराल नृ
लन के" पद के पहिले "भूपमंडली प्रचंड चंडीश को दंड खंड
से "नाम रामलखन कुमार कोसलेश के" होना चाहिये जान
मंगल पद ११९ और गीतावली के अन्तिम पदमें बालमीकीय रामा

के अनुसार बारात लौटते समय मार्ग में परशुराम का मिलना है। परन्तु वा०रा० में लक्ष्मण का परशुराम से बोलना नहीं है और कवितावली में "रोषै भाषै लखन अकनि अनखौही बातें... हैं। बारात के लौटते समय "भूप मंडली प्रचंड" और "सोई हौं बूझत राजसभा ।" परशुराम के शब्द हैं। इससे निश्चय है कि कवितावली के प्रचलित संग्रह में सोलहवें पदके बाद "भूप मंडली प्रचंड" से "कुमार कोसलेश के ।" तक चार पद हैं तब "कालकराल नृपालनके" और अन्त में 'दूलह श्रीरघुनाथ वने" पद होना चाहिये।

कवितावली के लंका काण्ड में पद ३० से ५५ तक २६ पदों में हनूमानजी की वीरता सम्बन्धी पदों का सग्रह है। वैसे तो मुझे कई पद्यों पर ऐतराज़ है क्योंकि वे वहां के न होकर अन्यत्र के हैं, किन्तु पैतालीसवें पद का दूसरा तुफ "कौन के तेज बलसीम भट भीम से भीमता निरखि के नैन ढाँपे" तो साफ ही है कि वह पद यातो हनुमान बाहुक में होना चाहिये अथवा उत्तर काण्ड में अन्य देवताओं के वर्णन के साथ।उत्तर काण्डके कवित्तों पर फिर विचार हो सकता है। अस्तु—

ऊपर के उद्धरणों का निष्कर्ष यही है कि श्रीजोकीबात सुनकर श्रीरामजी जटा समूह को मुकुटवत् बाँध, धनुष पर बाण चढ़ाकर कपट कुरंग मारीच के पीछे धाइके चले। चलते समय प्रेम से मुख को पीछे की ओर बार-बार घुमाकर तिरछी चितवनि कनखी आंख की कोरसे कटाक्ष पूर्वक देखते हुए धाये जा रहे थे। श्रीराम जी की मन्दस्मित पूर्वक तिरछो चितवनि से देखकर कपट मृगके पीछे दौड़ना फिर कुछ पग पर पीछे घूम कर पल मात्र देख लेना फिर दौड़ना। वही बिचित्र रूप छटा अद्भुत झांकी श्रीजीकी आंखो में बस गई है। हृदय में उसी अनूप रूप माधुरी का ध्यान करते

हुये- प्रियतम का नाम रटते रहकर अशोक वाटिका में कालक्षेप करने लगीं।

शंका—२४

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा ॥

इस पद में आया हूआ ''खल'' शब्द हरिदर्शनेच्छु एवं श्रीराम कर मरणेच्छु मारीच के लिये चरितार्थ है क्या ? यदि हाँ तो कैसे ? यदि नहीं तो इस शब्द का यहां प्रयोग क्यों ? विशिख और व्याल का अन्त्यक्षर 'खल' शब्द मारीच के लिये गोस्वामी जी ने क्यों प्रयुक्त किया। यदि कहा जाय कि वह पहले खल था, मुनि द्रोही था

सुनि मारीच निशाचर कोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही ॥

परन्तु अबतो कीट भृंग कीं नाईं राममय हो गया है तो फिर खल कैसे ? (पं०रामरक्षित शुक्ल 'रामायणी'

समाधान

जासु बचन पर खल बधे जिहि हित रोये नाथ।
सिन्धु बँधाये जासु हित तिहि सिय पद मम माथ ॥

(सि.कौ.में) ''खल संचये'(भ्वा.प.से.) धातु से निष्पन्न खल शब्द क्रूर, दुर्जन, अधम आदि का पर्यायवाची शब्द है। ख-छिद्रं लाति इति खलः'' भी सुधा व्याख्या कार ने लिखा है। किसी शब्द की क्लिष्ट कल्पना के आधार पर कुछ शब्दोंके अन्त्याक्षरों या आद्यक्षरों का सम्मेलन मान लेना ठीक नहीं, जैसा कि आप विशिख और ब्याल शब्द की अन्त्याक्षरी मानते से दीखते हैं। कुछ पण्डितम्मन्य लोग 'पूरीष, रोष, हिंसा और तस्कर' शब्दों के आद्यक्षरों के सम्मेलन से 'पुरोहित' शब्द मानकर ''अग्निमीडे पुरोहितम्'' (ऋ०१।१।१) के अनुसार ब्रह्म वाचक वैदिक पुरोहित शब्द की दुर्गति करते हैं। वे पण्डित मानी ''उपरोहिती कर्म अति मन्दा।

के उपरोहित और पुरोहित शब्द की बारीकी को समझते ही नहीं। क्या वैसी-वैसी क्लिष्ट कल्पनाओंके आधार पर 'जरा' और 'काम' का अन्त्याक्षर अथवा राहु" और 'मद्य' का आद्यक्षर से निर्मित 'राम शब्द को क्यों न मान लें? क्योंकि किसी शब्द के अनेक रूपार्थ में मानने के लिये पण्डितों के पास शब्द शास्त्र के भंडार से पर्याप्त साधन प्राप्त रहते हैं। मारीच के लिये 'खल' शब्द बहुत सोच बिचार कर रखा गया है ‘ अमर कोश में-

पिशुनो दुर्जनः खलः

लिखा है, और अमर त्रिवेक टीका में

त्रयः परस्परभेदनशीलस्य

लिखा है। हेमकोष और मेदिनी कोष मे है कि

खलः कल्के भुवि स्थाने क्रूरे कर्णे जपेऽधमे ॥

और स्वयं गोस्वामी जी ने ही खल शब्द की व्याख्या कई जगह की है जैसे-

बहुरि बंदि खल गन सति भायें। जे बिनु काज दाहिनेहुँ बायें॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।

अर्थात् खल वह है जो किसी प्रयोजन बिना ही दानेहु-हितकारी का भी बायें=अनिष्टकर्ता हो। अपने किसी निजी स्वार्थ के बिना ही दूसरे का अपकार करने वाला खल कहाता है।

यद्यपि कभी मारीच की मति "कीट भृंग की नाईं" हो गई थी परन्तु मरते समय श्रीसीताहरण हो जाने पर उसका कोई कार्य न होते हुये भी केवल खलता के कारण ही तो अत्यन्त आर्तस्वर बना कर श्रीराम जी के स्वर एवं टोन में—

"लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा।"
"आरत गिरा सुनी जब सीता॥"

लक्ष्मण जी को पुकार कर सीताहरण में पूर्ण सहयोग दिय
था। मारीच जब मृगचर्म ओढ पहिन कर मृग रूप में था तभ
श्रीरामजी ने उसका बध किया और उसी रूप में उसने आर्तस्व
से लक्ष्मण को पुकारकर तब मृग चर्म के भीतर से निज दे
(राक्षसी शरीर) को बाहर प्रगट करके शरीर का त्याग किया था
श्रीगोस्वामीजी ने दोहावली में कहा है कि—

सुकृत न सुकृती परिहरैं कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन दै गयो गीधराज मारीच॥

मरने से पचीस वर्ष पूर्व मारीच की मति कीट भृंग की नाई
हो गई थी। मृत्यु के दिन भी अपने निवास स्थान से अपने क
धन्य मान कर श्रीराम दर्शनार्थ चला भी था। परन्तु मरते सम
कपट त्यागते हुए भी खलता किया। इसीसे उसे कवि द्वार
खल कहा गया।

शंका २५

मृग रूप मारीच को देखकर सीता जी ने कहा कि—

सत्य सध प्रभु बधकरि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥

रामजी वह रुचिर मृग चर्म लाये या नही ? नहीं लाये त
सत्यसंघ कैसे और लाये तो क्या प्रमाण क्योंकि मारीच तो मर
समय अपने असली राक्षस रूप में हो गया था ? पं० रामबिशा
शर्मा; खरथुली, भैयालाल त्रिपाठी, लालरुद्र प्रताप सिह ठा.बिरौह

समाधान

दण्डके मृगयागारे कुंडलीकृतकामुंकः।
मायामृगवधे दक्षः, गतिर्मे जानकीधवः॥

अंगनि पंक न लेप करै डरि पात्र विथा न मही मम प्यारी।
दूबन कौं जरि खोदत खात न है डर हो न पताल उजारी॥

ा कौं ब्रह्माण्ड डरै न 'कुमार' करै रव घुरघुर भारी ।
संकोचि दया वश दुःखित आर्ति हरै हरिक्रोड़हमारी ॥

इस विषय पर पिछली मणियों में मानस मर्मज्ञों के अनेक
ादात्मक लेख निकल चुके हैं । फिर भी जिज्ञासुओं के प्रश्न
रहते हैं कि मारीच को मार कर श्रीरामजी मृग चर्म लाये
ा नहीं ? एक पक्ष के लोग कहते हैं कि लाये थे और—

लखन ललित कर लिये मृग छाल ।

गीतावली का प्रमाण उद्धृत करते हैं । दूसरे पक्ष के महा-
व तर्क का आश्रय लेकर कहते हैं कि अयोध्या से साथ
ाये हुये मृग चर्म को ही लक्ष्मणजी लिये थे । परन्तु थोथे
के अतिरिक्त और कुछ भी प्रमाण नहीं है; नहीं के पक्ष में।
अयोध्या से मुनि पट भूषण भोजन के साथ मृग चर्म रहा
ो तो भी किसी बन में कुटिया बना कर रहने वाला व्यक्ति
समय मृग चर्म लिये नहीं घूमता, और जहां किसी प्रकार
ुद्ध की संभावना रहती है, वहां मृग चर्म लेकर जाने का तो
तुक ही नहीं । संकटापन्न व्यक्ति के साहाय्य में वीर क्षत्रिय
ास्त्रास्त्र काम देते हैं, मृग चर्म एवं कुश कमण्डलु नहीं । अपना
चर्म तो वही साथ लिये घूमता है जो बाल ब्रह्मचारी परशु-
जी सरीखे एकाकी (बिना कुटिया के) यत्र तत्र विचरता
ा है । इसी प्रकार केवल नवोपनीत वटु ही अमुक काल तक
ालाश पिप्पल खदिरोदुम्बरादि दण्ड के साथ ही मृग चर्म लेकर
के लिये वैकल्पिक रूपेण वाध्य है । अन्य बन्य लोग नहीं ।

—

श्री गोस्वामीजी ने कथा भाग में सर्वत्र ही मौलिकता नहीं
है । अपने पूर्व के कथाकारों कवियों को अपना उपजीव्य

रखा है। भाव ही नहीं अपितु जहां आवश्यकता समझी वहां श
की तो बात ही क्या है पंक्ति की पंक्ति को ज्यों की त्यों ले लि
है। इस समाधान में केवल मारीच मृग चर्म से सम्बन्धित केव
एक छोटे से ग्रन्थ का ही कुछ प्रमाण दूँगा। विक्रम की पन्द्रह
शताब्दी तक के अपने से पूर्व के सकड़ों नाटकों से गोस्वामी
ने लिया है पर ११वीं सदी के हनुमान नाटक और १२वीं स
के 'दूतांगदम्' से बहुत अधिक लिया है। इनमें हनुमान नाट
बहुत बड़ा चौदह अंकों का है और उसकी समानार्थक भाषा मा
सकार की पंक्तियां मैं 'अन्यत्र' छपा चुका हूं।

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में गुर्जराधीश त्रिभुवनपालदे
के सभा पंडित महाकवि सुभट ने 'दूताङ्गदम्' नाम से वीर र
पूर्ण एकांकी छाया नाटक लिखा था। जिसका अभिनय बराब
होता रहा। जिसकी ख्याति बड़ी दूर तक फैल गई। 'कीर्ति कौ
दी' कार महाकवि सोमेश्वर तथा अन्य विद्वानों ने 'दूताङ्गद
की भूरि भूरि प्रशंसा की है। नाटक रचना पद्धति के अनुस
सुभट ने भी अपने से पूर्ववर्ती कवियों के अनेक श्लोक लिये है
विक्रमार्क की सत्रहवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में लिखे गये भा
रामचरित मानस में दूताङ्गदम् की अनेक पंक्तियां अनूदित हैं
कुछ उद्धरण देखिये—

दू०-अद्य कृतं मया तद्दैवस्य वश्यम् ॥४॥
मा०-करिय देव जो होइ सहाई ॥
दू०-लक्ष्मणः-आर्य !
कातरजनमनोऽवलम्बिना दैवेन किम्।
दैव हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति ॥५॥
मा०-कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥

दू०-यावल्ललाटशिखरं भ्रुकुटिर्न याति,
यावन्न कामुंकशिखामधिरोहति ज्या ।
तावन्निशाचरपते पटिमानमेतु त्रैलोक्यमूलविभुजेषु भुजेषु दर्पः ॥६॥
मा०-जबहिं समर कोपिहि रघुनायक । छूटिहिं अति कराल बहु सायक ।
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा ॥
दू०-तदादिश्य तामङ्गदाय दौत्यम् ।
मा०-दूत पठाइय बालि कुमारा ॥
दू०-रामः-(अङ्गदं सबहुमानमालोक्य) वत्स !
मा०-अङ्गद सन कह कृपा निधाना ।
दू०-पिता ते यद्वाली बलिनि दशकण्ठे कलितवान्
न तद्वक्तुं शक्ता वयमयमुदास्तेन पुलकः ।
स एव त्वां व्यावर्तयसि तनुजत्वेन पितृतां,
ततः किं वक्तव्यं तिलकथ निसृष्टार्थपदवीम् ॥७॥
मा०-बालितनय बुधि बल गुण धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ ।
दू०-किं प्राकारविहारतोरणवतीं लंकामिहैवानये,
किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपतेस्तत्रैव सम्पादये ।
मा०-सहित सहाय रावनहि मारी । आनौ इहां त्रिकूट उखारी ॥
दू०-आकल्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बध्नामि वा सागरम् ।
मा०-पूरहि न तु भरि कुधर विशाला ॥
दू०-देवादेशय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥८॥
मा०-नाथ जानि अस आयसु होई । उचित सिखावन दीजिय मोहीं ॥
दू०-अज्ञानादथवा[illegible]त्य रभसादस्मत्परोक्षे हृतः । सीता-
मा०-नृप अभिमान[illegible]ह बस किबा । हरि आनेहु सीता जगदम्बा ॥
दू०-सीतेयं प्रति[illegible]तामिति बचो गत्वा दशास्यं बद ।

मा०-कहेउ मुखागर मूढ़ सन मम सन्देश उदार। सीतादेइ मि
दू०-नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥११॥
मा०-होहि कि राम शरानल खल कुल सहित पतंग ।
मा०-न तु आवा काल तुम्हार ।
जग महँ सखा निशाचर जेते । लछिमन हनहिं निमिष महँ
दू०-एते ते मम बाहवः सुरपतेर्दोदण्डकण्डूहरा ।
मा०-मम भुजबल जानहि दिगपाला ।
दू०-सोऽयं जगत्त्रराभवकरो लंकेश्वरो रावणः ॥१२॥
मा०-सोइ रावण जग विदित प्रतापी ।
दू०-जम्भारातीभकुम्भस्थलदलनपटुः ।
मो०-जानहिं दिग्गज उर कठिनाई ।
दू०-किं "श्रवणविषयतां न प्रयातो मदीयः ॥
मा०-सुने न श्रवन अलीक अलापी । कीधौं श्रवन सुनेसि नहिं मो
दू०-मेघनाद प्रभृतिभटशतैर्व्यावृतां वेत्ति लंकाम् ।
मा०-बारिदनाद जेठ सुत तासू । (से) ऐसे सुभट निकाय । (तक)
दू०-नूनं सत्यमेतत् प्रचलति हि मतिः प्राप्तकालस्य जन्तोः ॥१३
मा०-निकट काल जिहि आवत साईं ।
मति भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ॥
भियहि काल बश मतिभ्रम भयऊ ॥
दू०-यदाखण्डलदर्पेन्दुराहवो मम बाहवः ॥१४॥
मा०-"......शठ बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल शशि ग्रसन हेतु जनु राहु ॥
दू०-बिलसितसरोषबानरबरूथिनी कलकलस्य कल्लोलाः ॥१६॥
मा०-लंका भयउ कोलाहल भारी ।

दू०-रावणः (सावज्ञम्)—
अलमलमनया मर्कटकीटकोलाहलविभोषिकया ।
मा०-देखहु बनरन केरि ढिठाई ।
दू०-रघुप्रभवे देव देहि वैदेहीम् ।
मा०-देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही ॥
दू०-मन्दोदर्यामण्डनमखण्डभावं समभ्येतु ॥१७॥
मा०-नाथ भजहु रघुनार्थाहि अचल होई अहिबात ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ॥
दू०-मनुष्यौ न मनुष्यौ तौ·······॥
व्याजेन किमविच्छन्नं देव ! दुर्दैवमेव ते ॥
मा०-तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
दू०-बानरास्ते न बानराः ॥१८॥
मा०-हम जो कहा यह कपि नहिं होई ।
दू०-राक्षसकुलकालरात्रिर्जानकी ॥
मा०-काल राति निशिचर कुल केरी । तेहि सीता·······॥
दू०-रावण-आः पाप ! प्रतिपक्षपक्षपातिन् ।
मा०-रिपुकर पक्ष मूढ़ तोहि भावा ।
दू०-एष ते चन्द्रहासेन शिरः पातयामि ।
मा०-कटिहौं तव शिर कठिन कृपाना ॥
दू०-माल्यवान्-देव ! लंकेश्वर ! विचारय नयचक्षुषा ।
किमहितमभिहितं कुमारविभीषणेन ॥
मा०-तात अनुज तव नीति बिभूषण । सो उर धरहु जो कहत विभीषण
दू०-रावणः (विभीषणं प्रति)—
अरे बान्धवापसद ! परिहर मे राजधानीम् तमेव च
वनेचरमनुप्रविश्य प्रकाशय नीतिनैपुण्यम् ॥

मा०–ममपुर वसि तपसिन सन प्रीती ।
शठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
दू०–बिभीषणः–न भाव्यमन्यथा भवति ॥
भा०–राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि ।
सो न टरै जो रचै बिधाता ।
दू०–यन्मौलिकमलारामे रामः क्षेप्ता शिलीमुखान् ॥२२०॥
मा०–रावण सिर सरोज वनचारी । चली रघुबीर सिलीमुख धा
दू०–त्रैलोक्यदीपनकरास्त्रशिखाकराले
यो रामनामदहने भविता पतङ्गः॥ २१ ॥
मा–होहि किराम शरानल खल कुल सहित पतंग ।
दू०–रे रे रावण ! रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुम,
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।
एकं नर्तनदापितान्नकवलैर्दैत्येन्द्रदासीजनै-
रेकंवक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषुकोऽन्योऽथवा ॥ २२ ॥
मा–कहु रावण रावण जग केते । (से) सत्य बढ़हि तजि माख ॥(
दू०–रावणः—भो भोः शाखामृग ; कस्त्वम् ?
मा०–कह दशकण्ठ कवन तें बन्दर ।
दू०–तस्य रामस्य दूतोऽहम् ॥२४॥
मा०–मैं रघुवीर दूत दशकन्धर ।
दू०–वालिनस्तस्य पुत्रोऽहंयद्वीर्यानुभवस्तव ॥२५॥
मा०–अङ्गद नाम बालि कर बेटा । तासों कबहुँ भई ही मैत
दू०–अङ्गदः–तदपि विषम क्षत्रियरुषा ॥३२॥
मा०–तदपि कठिन दशकण्ठ सुनु क्षत्रिजाति कर रोष ।
दू०–पारावतैः किमयमम्बुनिधिर्न तीर्णः ॥३४॥
मा०–नाघहि खग अनेक बारीशा ।

०-आस्कन्धावधिकण्ठ पीठविपिने प्राक् चन्द्रहासासिना-
छेत्तु प्रक्रमिते मयैव झटिति त्रुटयच्छिरासन्ततौ ।
स्वयं स भगवाँस्तन्मे प्रमाणं शिवः ॥ ३५ ॥
ा०-जिहि निजकर शिर सुमन उतारी । पूजे अमित बार त्रिपुरारी ॥
०-लूनासि येस्तव शिरांसि पुनः प्ररोह—
मेष्यन्ति मूढ़ ! न हि धूर्जटिपर्वणीव ॥ ३६ ॥
ा०-सादर शिव कहँ शीश चढ़ाये । (से)
अब तब काल शीश पर नाच्यो (तक)
०-रावणः-(सक्रोधं चन्द्रहासमादाय) न पुनः कथाशेषं करिष्यामि ।
ा०-तब सक्रोध निशिचर खिसियाना ।
काढ़िसि परम कराल कृपाना ॥ कटिहौं तब शिर कठिन कृपाना ।
०-रे नक्तंचरराज मुञ्च सहसा देवीमिमां मैथिलीम् ॥ ३७ ॥
ा०-तजि जानकिंहि कुशल गृह जाहू । परिहरि वैर देहु बैदेही ॥
०-एतां पश्यसि किन्नकिन्नरगणैरुदगीतदोर्विक्रमां,
सेना वानरभनुरुद्भटभुजस्तम्भाग्रभीमां पुरः ॥३७॥
ा०-सो कपि एक न सेना माहीं । जो न तुमहिं जीते रन माहीं ॥
०-हितं तु त्वां ब्रूमः ॥ ३८ ॥
ा०-तब हित कारण आयउँ भाई ॥
०-मम जनकदोर्दण्डविजये चलत्कीर्तिस्तम्भ ! ॥ ३८ ॥
ा०-बालि विमल यस भाजन जानी ।
०-आदौ येन सुबाहुमुख्यनिशिताहारैः रामं ताड़का नीता; नाशम्॥३[illegible]॥
ा०-जिहि ताड़का सुबाहु हति० ।
०-भग्नबदनश्रीस्तेस्वसाऽकारि च ॥३९॥
ा०-नाक कान बिनु भगिनि निहारी । सूर्पणखा कै गति तुम देखी ॥
०-हर गिरा: शिरांसि यानिरेजुः शिव,शिव तानि लुठन्तिगृध्रपादैः४१

(हनु०ना०१४।१६) सखे नाति विचित्रमेतत् ॥
मा०-बैठहि गीध उड़ाहिं शिरन पर ॥
अब तव शिर भुज जम्बुक खाहीं । राम बिमुख यह अनुचित नाही
दूर-बलि कुर्वन् शम्भोः पलभुजपतिः सत्रिभुवनां ।
शिरः श्रेणीं लेभे ननु विगमयन्नुत्पलकृते ॥५०॥
मा०-जो सम्पति शिव रावणहि दीन्ह दिये दसमाथ
दू०-दिव्यैरिन्द्रजिदत्रलक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं लम्भितः ।
केनाप्यत्र मृगाक्षि ! राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवीः ॥ ५४ ॥
हनु०ना० १४।६०॥
मा०-लछिमन इहाँ हत्यो इन्द्र जीता ।
कुम्भकरण रावण द्वौ भाई । इहां हते सुर मुनि दुखदाई ॥

"दूताङ्गदम्' से मानस में ली गई पंक्तियां यहाँ प्रायः ज्यों की त्यों दी जा रही हैं। इसलिए पाठक देखें कि गोस्वामी जी दुताङ्गदम् का उतना ही आदर करते थे जितना कि हनुमन्नाटक का। हनुमन्नाटक और दूताङ्गदम् (दोनों) में सुवेल की झाँकी के प्रसङ्ग में लिखा है कि सुवेल पर श्रीरामजी जिस रुचिर मृदुल मृग चर्म पर विराजे थे—

तापर रुचिर मृदुल मृगछाला । तिहि आसन आसीन कृपाला ॥

वह कनक मृग मारीच का चर्म था मूल देखिये रावण ने पूछा—

रामास्याधुना कीदृशी चर्या ?

इस समय राम की स्थिति कैसी है ? तब उत्तर मिला कि—

१-अंके कृत्वोत्तमांगे प्लवगबलपतेः
२-पादमक्षस्यहन्तुः कृत्वोत्संगे सलीलम् ।
३-त्वचि कनकमृगस्याङ्गमाधाय शेषम् ।
कोणेनोद्वीसमाणस्त्वदनुजवचने दत्तकर्णोऽयम स्ते ।

सुग्रीव ग्रीव वाहु' कृत्चरणभरः सोऽङ्गदे। (हनु० ११।८)

४–बाणं रक्षः कुलघ्नं प्रगुणित मनुजेनादरात्

५–तीक्ष्णमक्ष्णः कोणेनोद्वीक्षमाण––

६–स्त्वदनुज बचने दत्तकर्णोऽयमास्ते ॥ (दूतांग०।२७ हनु०ना०११।७

अर्थात् वानराधिप सुग्रीव की गोदमें शिर रखकर के तुम्हारे पुत्र अक्ष को मारने वाले हनुमान (और अङ्गद) की गोद में पैर रखकर तथा मारे हुए (तुम्हारे मामाजी※ लगने वाले मारीच) स्वर्ण मृग के सुन्दर चर्म पर बैठे हुए (पीठ आदि समस्त) अङ्गों को रखकर लक्ष्मण जी के द्वारा अधिक गुणवान तीक्ष्ण बनाये हुये राक्षस कुल के नाशक उस चोखे बाण को आदर के साथ आँख के कोने (कटाक्ष) से देखते हुये तुम्हारे छोटे भाई विभीषण की बात को ध्यानपूर्वक सुनते हुये श्री रामचन्द्र जी लेटे हुये हैं ।

अब देखिये श्रीगोस्वामीजी ने इस श्लोक को कैसे लिया है–

१–प्रभु कृत शीश कपीश उछङ्गा ।

२–बड़ भागी अंगद हनुमाना । चरण कमल चापत विधि नाना ॥

३–तापर रुचिर मृदुल मृग छाला । तेहि आसन आसीन कृपाला

४–५–दुहुं कर कमल सुधारत बाना ।

६–कह लंकेश मन्त्र लगि काना ॥

इस "त्वचि कनकमृगस्य" और 'बिष्टस्ते मातुलत्वचि" से स्पष्ट है कि सत्यसन्ध श्रीरामजी मारीच को मारकर मृगचर्म लाये थे। इसी को श्री गोस्वामीजी ने गीतावली में लिखा कि–

हेमको हरिण हनि फिरे रघुकुल मणि,

※ सुन्द दैत्य और माल्यवान निशाचर में मैत्री थी। माल्यवान रावण का नाना था इसीसे सुन्द दैत्य के पुत्र मारीच को रावण मामा (मातुल) कहता था।

लखन ललित कर लिये मृग छाल । (गीतावली ३।८)

किसी समाधान में ठोस प्रमाण के सामने दिमागी कस का कुछ भो मूल्य नहीं हुआ करता । प्रमाणाभाव में ही क काम देती है परन्तु मान्य प्रमाण के सामने तद्विरुद्ध कल कल्पना मात्र ही रह जाती है । जिस तरह रावण ने ऊपर यति (पर्यटक भिक्षुक भिखमंगा जैसा कि प्रायः अवध प्रान्त गोसाईं जाति के भिक्षुक यति बनकर भीख माँगते डोलते है मँगन गोसाईं अतिथि के वेष में श्री जानकी जी के सामने ग था । पर उसने अपना वाह्य भूषा मात्र बदला था अर्थात् मंग गोसाइयों की तरह डोर लोटा सोटा छाता जूता त्रिपुण्ड अ रुद्राक्षादि धारण कर लिया था । देखिये (बा० रा० ३।४६।३ पर उस मलिन काषाय वस्त्र के भीतर राक्षसेन्द्र रावण का अ रिवर्तित विग्रह ही था । इसी से उसने जब ऊपर का वस्त्रा दूर करके अपना रूप दिखाया तो माया सीता को कुछ भी भ न हुआ क्योंकि ऊपर के आवरण मात्र दूर होने से कोई विशेष नही आई परन्तु नाम सुनने से भय छा गया—

तब रावण निज रूप दिखावा ।
भई सभय जब नाम सुनावा ॥

स्मरण रखना चाहिये कि भगवान शंकर की कृपा से राव अपने ९ शीश और १८ भुजाको जब चाहता था तभी प्रगट कर था प्रायः हरदम छिपाये ही रहता था । और वैसे तो वह ज का ही बीस बाँह और दश शिर वाला था देखिये वेद का कहन

ब्राह्मणो प्रथमो जज्ञे दशशीर्षो दशास्यः ।। (अथर्ववेद ४।६।

श्रुति का विस्तृत अर्थ समाधान करके वेदों में रामक ग्रन्थ मे देखा जा सकता है । अस्तु उसी तरह मारीच ने भी उ

अनेक रंग त्रिरंगो मणि जटित मृगचर्म इस तरह धारण कर
ा था कि वह उस समय मृगेतर नहीं जाना जा सकता था।
श्रीरामजी सत्यसंध सत्यसंकल्प हैं श्रुति सत्यकाम सत्य
कल्प कहती है। अतः सत्यसंध श्रीराम जी का बाण लगते ही
म माया मृग (अर्थात् नकली मृग) के शरीर से वह रुचिर
ृगचर्म अलग हो गया। किंवा मारीच मृगचर्म के प्रावरण का
लग कर अपने राक्षसी देह में दिख गया। श्रीगो० जी ने लिखा
है कि मारीच को मारकर लौटते ही लक्ष्मण जी से भेंट हो गई
ौर दोनो भाई साथ ही आश्रम पर लौटे–
'खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा' मृगबधि बंधु सहित ही आये
ार्थात् जैसे ही मारीच को मारे वैसे ही तुरन्त लौट पड़े—

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा।

वैसे ही अर्थात् मारीच के पास से घूमते ही

"रघुपति अनुजहि आवत देखी। और तब
अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरी तट आश्रम जहँवाँ॥

मारीच वधानन्तर श्रीलक्ष्मण जी उस कनक मृग का ललित
ग छाल लिये हुए आश्रम पर आये इस बात को गो० जी ने
गीतावली में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है–

हेम को हरिण हनि फिरे रघुकुल मणि,
लखन ललित कर लिये मृगछाल। (गो० अ० ६)

ानस में इस मारीचस्य रुचिर मृगचर्म का संकेत इस तरह है कि–
"तार रुचिर मृदुल मृगछाला। तिहि आसन आसीन कृपाला।
मारीचमायामृग चर्मपरिकर्मितनिर्मितदर्भास्तरणः।
ेहवीं शताब्दी मे कवितार्किक केशरी वेदांताचार्य श्री वेंकट
ाग कृत रघुवीर गद्यम्" और भी कितने प्रमाण संकलित किये
ा सकते हैं।

शंका–२६

आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम च न जिन रेख

जब जटायु को श्रीराम जी का साक्षात्कार हो गया चरणों का ध्यान न करके केवल रेखा ही का सुमिरन क्यों कर

(श्री कवीन्द्र रामायणी, मानसमणि मार्च १९४३

समाधान

रामकुमार जिन्हें पितु से बढ़ि मान किये बन मांझ मि
जाहि बचावन को बड़ भ्रात को पंख जरे रबि तेज झि
जो निज पांखन चोंचन के बल मूर्च्छित कै दशशीश रिले
देह तजे सिय हेत परे रन धन्य जटायु सुमुक्तिहि लेते

श्री गीधराज जी श्रीसीताराम जी के सर्वाङ्ग का ध करके इस समय केवल पद रेखाओं का स्मरण इसलिए क कि इस समय श्रीराम जी श्रीसीता जी के विरह में व्याकु और श्रीसीता जी की व्याकुलता देख ही चुके हैं। अतः होंगे रूप का ध्यान भावनानुकूल नहीं जँचा, एतदर्थ चरण का स्मरण करते थे और युगल सरकार के हस्त एवं च रेखाएँ वही–वही हैं। जब चरण रेखा से स्पर्शित धूल भ वत् सम्मिलन का आनन्द देती हैं—

चरन रेख रज आंखिन लावहिं। रघुवर मिलन सरिस सुख

तब उन साक्षात् चरण रेख के स्मरण से जो आनन्द उसे कौन कह सकेगा ? भगवान् की श्री मुखवाणी है कि

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मन निर्मल करने के शतशः सहस्रशः साधन सद्ग वर्णित हैं जो अपने–अपने स्थान पर सब ठीक हैं। उन्हीं साधनों में श्री हरिचरण रेखाओं का ध्यान भी एक

साधन है। वे रेखायें महारामयण अगस्त्यसंहिता श्रीमद्भागवत आदि कई सच्छास्त्रों में वर्णित हैं। जितनी कम रेखाओं का स्मरण करेंगे; ध्यान में उतनी ही सुगमता होगी। महारामायण और अगस्त्य संहिता में अड़तालिस चिन्हों का वर्णन है, भक्तमाल में बाईस भागवत में उन्नीस गीतावली में छह विनयपत्रिका में पाँच और रामचरित मानस में चार का ही वर्णन है।

ललित अंक कुलशादिक चारी।

"ध्वज कुलिश अंकुश कंजयुत बन फिरत कंटक किण लहे॥"

"अंकुश कुलिश कमल ध्वज सुन्दर भँवर तरंग विलासा।"(गीतावली)

भगवच्चरणों में जिन वस्तुओं का प्रति रूप है वे प्रायः अनेक बार के देखे गये रूप हैं देखे गये पदार्थ का ध्यान अनयास ही हो जाता है। जटायु ने उन रेखाओं को बराबर देखा ही था। अड़तालिस रेखाओं का कार्य एवं महत्त्व महारामायण में बड़े विस्तार से लिखा है। बहां बताया गया है कि प्रत्येक रेखा से एक-एक भगवदवतार होता है किस रेखा से कौन अवतार होता है यह भी शंकर जी ने स्पष्ट रूप से बताया है। अड़तालीस में केवल अमुक-अमुक चार रेखाओं के ध्यान सतत् स्मरण से सभी कार्य बन जाते हैं जीव का परम कल्याण हो जाता है इसी लिये भगवान् कपिल जी ने मात्र चार रेखा का ही ध्यान बतलाया है।

सञ्चिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्।

वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्॥ (भागवत ३।२८।२१)

श्रीरामचरितमानस में भी इन्ही चार ही रेखाओं का नाम बार-बार आया हैं यद्यपि कि एक-एक रेखाके ध्यान स्मरण का अनन्त फल है जिन्हें कोई वर्णन नहीं कर सकता तो भी साधन के लिये प्रारम्भिक फल भक्तमाल के प्रथम टीकाकार श्री प्रियादास जी

ने समझाकर कहा हैं। श्रीरामजी तो--

भक्तहेतु लीला तनु गहहीं।

धनुष बाण धारे रहत सदा भक्त के काज।
'अग्र' सु एते जानिये राम गरीब निवाज ॥

लीलाविग्रह धारक प्रभु अपने भक्तों के रक्षार्थ धनुष, बा गदा, चक्र आदि अनेक दिव्यायुध हरदम लिये रहते हैं। इ तरह भक्त अध्यात्म मार्ग में अग्रसर हो, उसके मार्गिक प्रत्यव नष्ट हों, इसलिये अपने श्रीचरणों में अनेक प्रकार के दिव्य चि धारण करके उन्हीं चिह्नों द्वारा सन्तों की सहायता अलक्ष्य र से करते रहते हैं, ऐसा भक्तमालकार श्रीनारायणदासजी महारा का कहना है--

सीता पति पद नित बसत येते मंगल दायका।
चरण चिह्न रघुनाथ के सन्तन सदा सहायका ॥

श्रीरामजी के सभी चरण चिह्न भक्तों की सब प्रकार सहायता करते रहते हैं, परन्तु श्रीकपिलजी ने तथा रामचरित मानस में चार ही का अंकन किया है इसलिये इस प्रसंग में च रेखा का ही चिन्तन किया जा रहा है। महाप्रभु श्रीबल्लभाचा जी ने अपनी भागवती टीका श्रीसुबोधिनीजी में भाग० ३।२८।३० पर टीका करते हुए लिखा है कि--

चिह्नचतुष्टयेनाढ्यं सम्पन्नम्।

(१) भक्तानां पापपर्वतपक्षच्छेदनार्थं बज्रः।
(२) भक्तानां मनोगजवशीकरणार्थमङ्कुशम्।
(३) अत्रस्थितानां सर्वभयनाशनज्ञापनार्थं वज्रः।
(४) सुखसेवार्थं चाम्बुजः।

एतानि लाञ्छनानि चिह्नानि चतुर्विधपुरुषार्थज्ञापकानि।

एतादृशान्यनन्तानि चिह्नानि सन्तीति आढ्यतां ज्ञापयति ॥
[भा० सुबो० ३।२८।२१]

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी सारार्थदर्शिनी [भागवती टीका] में चिह्नों का स्थान निर्देश करते हुए लिखा है कि—

पादादिक्रमेणैकावयवध्यानमाह-वज्रेति। दक्षिणचरणतलध्यानम् भक्तैर्दृश्यत्वात् तस्य दक्षिणचरणस्य कनिष्ठातलेऽङ्कुशं ध्यायेत् अङ्कुशतले बज्रम् । अनामिका तले सरोरुहम् ध्वजम् ।

भावार्थ दीपिका प्रकाश [वन्शीधरी टीका] में भी श्रीमद्विश्वनाथ का हवाला देते हुए उक्त पंक्तियों को ही दुहराया गया है ।

ध्वजकुलिश अंकुश कज जुत बन फिरत कंटक किण लहे ।

उक्त चार रेखाओं को महारामायण में दाहिने चरण की रेखा कहा है । श्रीरामजी बामपद सिंहासन पर से नीचे लटकाये बैठे हैं । बाम जानु पर दक्षिण चरण रखे हैं अतः दक्षिण पद तल और उसकी रेखायें सुस्पष्ट दीख पड़ती हैं—

वामं पादंप्रसार्याश्रितकलुषहरं दक्षिणं कुञ्चयित्वा
जानुन्याधाय दिव्ये रिपुदलदमने चापबाणे दधत्सः ।
रामः पाणिद्वयेन प्रतिभटभयदः पद्मगर्भारुणाक्षो
देवीभूपादिजुष्टो वितरतु जगतां शर्म साकेतनाथः ॥ (रामार्चा)

भक्तमाल का टीका करते हुए श्रीप्रियादासजी ने लिखा है कि—

सन्तन सहाय काज धारे नृप राज राम
चरन सरोजन में चिह्न सुख दाइये ।
मन है मतंग मतवारो हाथ आवै नाहिं
ताके लिये अंकुश लै धारयो हिये ध्याइये ॥
ऐसे ही कुलिश पाप पर्वत के फोरिबे को
भक्तिनिधि जोरिवे को कंज मन लाइये ॥१५॥

छिन में सभीत होत माया की कुचालि देखि
ध्वजा सों विशेष जानो अभै को विश्वास है ॥१
(भक्तिरस बोधिनी कवित्त १५, १

इसी तरह सभी रेखाओं का माहात्म्य लिखा है कि भ
को किस कार्य के लिये किस रेखा का ध्यान करना चाहि
परन्तु जटायुजी किस किस रेखा को सुमिरते थे ? बताना
मुश्किल है तो भी इसे गोस्वामीजी का अभिप्राय उन्हीं रेख
से समझ पड़ता है जिनका वर्णन उन्होंने अपने रामचरितमा
में किया है। किन्तु किस रेखा का क्या महत्व है यह वहां
लिखा है। गीधराजजी सहायता के लिये श्रीराम चरण रेख
का स्मरण कर रहे हैं।

१—देवलोक में काम विजय यश विस्तारित करने
वीरवर अर्जुन ने साफ साफ निःसंकोच भाव से कह दिया था

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म् ।
तस्याहं निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ गीता ६।

और श्रीकृष्ण ने भी इसका अनुमोदन किया कि--

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥ गीता ६।३

अतः ऐसे प्रमाथी बलवान दुर्निग्रह चंचल मन को सु
से वश में करके निर्मल करने को भगवच्चरण का अंकुश सम

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने विनय पत्रिका में--

अंकुश मनगज वशकारी। (वि० प० ६३।२)

और--महामत्त गजराज कहं वश कर अंकुश खर्ब ॥
लिखा है। आगे चलकर विनय पत्रिका पद्य १०२ में लिखा है

विषय वारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुं पल ए
ताते सहिय विपति अति दारुण भरमत जोनि अने

कृपा डोरि बन्शी पद अंकुश परम प्रेम मृदु चारो।
यहि बिधि बेधि हरो मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥

इस पद्यांश में अंकुश रेख का स्मरण नहीं किया गया है पेतु श्रीरामजी को ही तत्पदांकुश का स्मरण दिला कर श्रीराम से ही दुःख दूर करने की प्रार्थना की गई है। श्रीरामजी के क्षण पद तल में अनामिका अंगुली के सामने उच्चभाग लाल तल पर चमकता हुआ श्याम रंग का अंकुश शोभित है--

दक्षिण पद अनामिका सम्मुख अंकुश चिह्न अनोखो।
श्याम रंग लोचन सुखदायक भक्तसहायक चोखो॥

(प्रो० लाला भगवानदीन कृत श्रीराम चरणांक माला १५)

अंकुशाज्ज्ञानं संजातं सर्वलोकमलापहम्।
प्रापयत्येव सन्मार्गं मत्तमातंगजं मनः॥

(महारामायण ४८।७)

श्रीजटायुजी माया के युद्ध में असफल होना नहीं चाहते थे, यपि कि वे रावण के युद्ध में असफल होने और शरीर के क्षत क्षत हो जाने से और पंख एवं पैर कट जाने से पीड़ा का अनुव करते थे, उससे जो मन को चंचलता बढ़ गई है, श्रीराम दांकुश रेखा के ध्यान से मन की वह चंचलता छूट जाय, मन ान्त हो रहे और झटिति श्रीरामजी की प्राप्ति हो जाय, और आ भी ऐसा ही। श्रीगोस्वामीजी ने गीतावली में लिखा है कि--

यहि प्रकार करमींजि शीश धुनि गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तिहि औसर आइ गये द्वौ भाई॥ (गी० ३।१२)

२--श्रीरामचरित मानस में पाप को पहाड़ बताया गया है--

"पाप पहाड़ प्रगट भइ सोई।"

भक्तानां पापपर्वतपक्षच्छेदनार्थं वज्रः। (सुबोधिनी)

'कुलिश पाप पर्वत के फोरिबे को० ।'

जीव के अनन्त जन्मार्जित पाप पहाडवत् हैं, अतः उ पर्वताकार पापों को समूल नष्ट करने के लिए श्रीरामचरणां वज्र का ध्यान करना चाहिये। अंगुष्ठ मूल के पास यह ि मेघ में चमकती विद्युतवत् प्रकाशित है। इसासे देवेन्द्र के की शक्ति मिली है —

रामचन्द्र अंगुष्ठ मूल ढिग बज्र चिन्ह अति रूरो ।
चपला बरन महामुद दायक सन्त सहायक पूरो ॥
सुरपति को आयुघ सब जानत याही ते प्रगटानो ।
दुख हर महा प्रबल बलकारक पाप बिदारक जानो
(श्रीराम चरणांकमाला १

बज्राद् बज्रमुत्पन्नं पापपर्वतहानिदम् । (महारामायण ४८।४

गीधराज अपने पापपर्वत फोड़ने-नष्ट करने के लिये कु वज्र चिन्ह का स्मरण कर रहे हैं । अर्थात्—

"गीध्र अधम खग अमिष भोगी । (रा०च०मा०)
खाइ कुजन्तु जियाहौं ।" (गीतावली ३।१४)

एक तो किसी प्राक्तन पाप का परिणाम गीध शरीर और इस जन्म में भी मांसाहार रूप महापाप करते-करते—

गयो बपु बीति बादि कानन० (गीतावली ३।१२)

अतः अपने समस्त पर्वताकार पापों को विदीर्ण करने के यह चिन्ह ध्यान में आना आवश्यक है ।

३-भक्ति निधि-खजाना संग्रह करने के लिए कोशयुक्त से पद चिन्ह कमल का स्मरण करना जीवमात्र का कर्तव्य है व

श्री रघुवीरहिं भक्ति पियारी । (रा०च०मा०)
अतः भक्तिनिधि जोरिबे को कंज मन लाइये । (भ०मा०ट

श्री गीधराज जी ने सोचा होगा कि जब सीता जी के संग्रह ने में आनो शक्ति नहीं चली कि—

दशरथ सों न नेह प्रतिपाल्यों हुतो सकल जग साखी।
बरबस हरत निशाचरपति सों हठि जानकी राखी ॥ (गी० ३।१२)

तो भक्ति का संग्रह करके श्रीरामजीके नेह का प्रतिपालन कर ही लेना चाहिये। श्रीसीता जी के संग्रह में तो कोई पाय नहीं चली, कोई सहायक नहीं था, किन्तु भक्तिनिधि के संग्रह में तो श्रीरामचरणों में रेखा रूप स्थित कमल सहायक हैं।

ध्वजाके ऊपर ठीक अंगुष्ठ के नीचे उच्च स्थान पर गुलाबी रंग का अष्टदल कमलांक शोभित है। इस कमलांक के ध्यान का फल महारामायण सर्ग ४८ में अत्यन्त विलक्षण बताया है—

पङ्कजात् पङ्कजं जातं विष्णुहस्ते मुदोन्वितम् ॥४३॥
न लीयते कदाचिद्वै तस्य ध्यानी भवार्णवे।
कृतेऽपि कुत्रचिद्वासे पद्मपत्रमिबाम्भसा ॥४४॥
अम्बर ऊपर कमल किन्ह है सन्तन को मनहारी।
परम मनोहर रंग गुलाबी नयनन को सुखकारी ॥
विष्णु हाथ जो कमल विराजै सो याको अवतारा।
सुखकर सर्व भक्ति निधिदायक सन्तन को मन प्यारा ॥
(श्रीराम चरणांकमाला १०)

४-ध्वजा विजय का चिन्ह है। जिसकी ध्वजा जहाँ फहराती रहती है वह उसका स्थान माना जाता है। फिर उस स्थानाधिपति से न्यून बल वालों की हिम्मत नहीं होती कि उसपर हमला करे। अतः हृदय में जब भगवच्चरणमें अंकित ध्वज फहराता रहेगा तो वह श्रीहरि का निवास स्थान समझा जायेगा। जैसा कि कहा है—

मम हृदय भवन प्रभु तोरा। (वि०प० १२५)

और जीव के प्रबलतम शत्रु हैं—

तम मोह लोभ अहंकारा । मद क्रोध बोधरिपु मारा ॥
क्रोध मनोज आदि विवेका । (रा.च.मा.) (वि.प.१२५

ये शत्रु वर्ग हृदयमें भगवद्ध्वज फहराता देखकर डर जाये तब वहां जाने का संकल्प भी न करेंगे । अंकुश से ऊपर अर्थ अंगुष्ठ और तर्जनीके नीचे ध्वजरेखा अंकित है, रंग उसका विचि

अंकुश के ऊपर ही राजत ध्वजा चिन्ह मनभावन ।
चित्र विचित्र रंग का शोभित महा मनोहर पावन ॥
धर्मध्वजा धारी गण सिगरे वाको रूप कहावें ।
दुख हर विजय सुयश को दाता भावुक भक्त बतावें ॥
(श्रीराम चरणांक माला १६)

ध्वजया विजयो जातः । (महारा०४८।४८

साधक को यदि चारो रेखाओ का ध्यान स्मरण होता रहे त तो श्रेष्ठतम है ही, अन्यथा किसी एक रेखाका ध्यानही मानबके लि सुर दुर्लभ सुख करि जगमाहीं । अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं

श्री जटायु जी तो प्रत्यक्षदर्शी होने से चारों रेखाओं क स्मरण करते रहे होंगे ।

श्रीरामजी के अन्य चरण चिन्ह भी भक्तों को अनेक सहायत करते हैं परन्तु उनका वर्णन यहां इसलिये नहीं किया गया कि श्री रामचरित मानस में अन्य चिन्हों का नाम नहीं है । कुछ महानुभाव अर्थ करते हैं कि "रेखायुक्त जो चरण हैं उन चरणो का स्मरण करते थे और चरणों का ध्यान उपयुक्त था क्योंकि गीधराज जी दास्य रस वाले थे इत्यादि ।

परन्तु यह कोई बात नहीं कि दास्य भाव वाले ही चरण का स्मरण करें । भगवच्चरण का स्मरण तो सभी भाव वाले

करते हैं। श्रीसीताजी महारानी से बढ़कर मधुर रस का भोक्ता कौन होगा। उनके लिये भी कहा गया है कि "जे पद जनक सुता उर लाये"।

और जिन दशरथ जी ने मनु रूप में स्पष्ट रूप से माँग लिया है कि-

"सुत विषयक तव पद रति होऊ।"

उन परमवात्सल्य भाव वाले महाराज के लिये भी लिखा है कि-

"अस कहिगे विश्राम गृह राम चरण चित लाइ।"

और गीधराज का भी भाव तो वात्सल्यमय था उन्होंने ही कहा-

"सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा।"

और श्रीरामजी ने भी गीतावली में कहा है कि--

"सुनहु लखन खगपतिहिं मिले बन मैं पितु मरण न जान्यो।"

देखिय आपु सुवन सेवा सुख मोहिं पितु को सुख दीजै॥

शंका २७

"गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण वहु पीत अनूपा"

श्याम गात विशाल भुज चारो॥

यहां हरि से किनका तात्पर्य है। त्रिदेवो में भगवान् विष्णु ही चतुर्भुज हैं। परात्पर प्रभु श्रीरामजी तो नित्य द्विभुज हैं। इसपर अनेक प्रमाण तो आपने भी अपने मानस सिद्धान्त में उद्घृत किया है। तो क्या श्रीराम भक्तोंको भी साकेत में चतुर्भुज रूप ही होता है? अथवा जटायु जी ने ही साकेत धाम छोड़कर कोई अन्य गति प्राप्त किया था? (जगदीश शरण सिंह)

समाधान

ब्रह्मादिभिः सुरवरैः समुपास्यमानां

लक्ष्म्यादिभिश्च [illegible]भिः परिसेव्यमानाम्।

[illegible]र्वेश्वरैः सहगणैः परिगीय[illegible]

तां राघवेन्द्रनगरीं नितरां नमामि ॥

यहां हरिरूप से वैकुण्ठधीश चतुर्भुज श्रीमन्नारायण से ही तात्पर्य है । वह इसलिए कि जीव मुक्त होकर जब उस धाम को जाने लगता है जिसके लिए स्वयं भगवान ही का तथा अन्य तत्त्वज्ञों का कहना है कि—

"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।" (गीता)

"पुनि मम धाम जाइहौ जहां सन्त सब जांहि ॥"

"नच पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते० । (छा० उ०)

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।" (वेदान्त दर्शन)

उस भगवद्धाम में जाते समय मार्ग में बारह लोकों में होते हुए जाना पड़ता है ।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासाः उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ (गीता ४।२४
अर्चिरहः सितः पक्षः उत्तरायणवत्सरौ ।
मरुद्रवीन्दवो विद्युद्वरुणेन्द्र चतुर्मुखाः ॥
एते द्वादश धीराणां परधामातिवाहिकाः ॥ अर्चिरादिपद्धति

तत्तल्लोकों में होकर जाते समय जीव चाहे तो इच्छानुसार काल तक तत्तल्लोकों के विहारों को करता जाय, तो भी उसमें बँध नहीं सकता । जिस लोक (जिस देश) में जाय और वहां के रहन सहन रीति भांति एवं वाह्याभ्यंतर तत्त्व जानकर वहां का यथार्थ आनन्दानुभव करना चाहे तो वहां की वेषभूषा रहनसहन को अपना लेने से ही समुचित ज्ञातव्यता पूर्वक आनन्दोपभोग का लाभ प्राप्त होता है । ऐसा शिष्टजनानुमोदित तथ्य है । भू (मनुष्य) लोक से ऊपर भुवः स्वः जनः महः तपः सत्यलोक शिवलोक वैकुण्ठ आदि सभी लोकों के निवासी चतुर्भुज ही

कारण कि एकपाद विभूति के सभी लोक चतुर्भुज श्रीमन्नारायण के आधिपत्य में है और भूर्लोकातिरिक्त सभी लोक भोग लोक हैं, एतदर्थ सभी भोग लोकादि गण प्रधानलोकाधिष्ठाता हरि श्री विष्णु के समान ही चतुर्भुज होकर रहते हैं। मुक्त जीव के लिए बन्धन नहीं कि वह तत्तल्लोकों में रहने के लिए तत्तल्लोकानुसार आयुधभूषणादि धारण कर ही लेवें। इसीसे जटायुजी के लिए—

गीधदेह तजि धरि हरिरूपा ॥

कहा गया है, अर्थात् जैसे गीधराजजी ने अपनी इच्छा से शरीर का त्याग किया। श्रीरामजी के—

राम कहा तनु राखहु ताता ॥

मेरे जान तात कछुक दिन जीजै ॥" (गीतावली)

बहुत आग्रह करने पर भी देह तज ही दिया इसी तरह श्रीरामजी ने तो कहा था कि—

तनु तजि तात जाहु मम धामा ॥

तो भी गीधराजजी श्रौत सिद्धान्तानुसार

निरंजन: परमं शान्त्युपैति। (मु० उ० ३।१।३)

भोग मात्र साम्यलिंगाच्च। (ब्रह्मसूत्र)

सर्वशक्तिमान होने के कारण अपनी इच्छा से चतुर्भुज श्रीमन्नारायण का रूप धारण करके श्रीरामभद्रजी की स्तुति करके तब—

अविरल भक्ति मांगि वर गीध गयउ हरिधाम ॥

शंका–२८

तिहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम।
जटायु की कौन क्रिया रामजी ने किया था ?

(पं० केदारनाथ, रामबन, सतना)

समाधान

कीन्हे बिना तपहूं जिन ईश को पुत्री के पुत्र बनाइ खेलाये।
कै तप घोर परं पद त्यागि परं प्रभु हों सुत यों वर पाये।
ब्रह्म धरे वपु चारि 'कुमार' सुलाड़ लड़ाइ द्युलोक सिधाये
तऊ अवधेश खगेश की भांति सों राम के हाथ से पिंड न पाये।

जिस तरह आपके बघेल खण्ड में सन्तान के विवाह को काज कहा जाता है—

लरिका के काज नीक कितना था बात गमैयन से पूँछा।
(बैजू की सूक्तियां, रीवां

उसी तरह अवध के गांवों में मृतक की अन्त्येष्टि श्राद्धादि की क्रिया कहा जाता है तिलांजलि--

अनुज क्रिया करि सागर तीरा।

दाह संस्कारादि--

करहु क्रिया परिहरि सब शोका।
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मान॥

अतः क्रिया का अर्थ मृतक संस्कार है किन्ही सूर ने लिखा है कि

पितु की अन्त क्रिया करिबे को बड़ो पुत्र अधिकारी।
सो पितु क्रिया भरत कहँ सौंपी प्रभु खग क्रिया सँवारी॥
पितृ क्रिया अधिकारी बड़ो सुत सो लघु बन्धुहिं द्वै पुर त्यागी
कै पितु ते दशगूनो "कुमार" कियो खग केरि क्रिया अनुरागी

सुप्रसिद्ध रामायणी कविरत्न पं० श्रीभैरव प्रसाद द्विवेदीजी ने लिखा हैं कि--

पितु को न क्रियो सम्हली हमसे, खग नायक ही की क्रिया करलें॥ मानस तरंग

महर्षिबाल्मीकि का अनुसरण करते हुए पं० श्रीकृतिवासजी

रखते हैं कि--

राम बलेन पक्षी पितार समान। सीतार कारने पक्षी हाराइल प्रान।
य जन्तु खाइल अधर्म अपयश। अग्नि कार्य करि राख लक्ष्मण पौरुष।
ते लक्ष्मण दिव्य अग्नि मुण्ड काटि। ज्वालिलेक कुण्ड वीर करि परि पाट॥
लिलेन पितार जटायु पक्षिराज। दुई भाई ताहार करेन अग्नि काज।
कार करेन तार व्यवस्था येमन। गोदावरि जले राम करेन तर्पण॥
म दर्शने पक्षी गेल स्वर्ग वास। अरण्येते गाहिल पण्डित कृत्तिवास॥

(कृत्तिवासी रामायण आरण्य कांड सर्ग १४)

गृद्धराज को मृतक देखकर विलाप करते हुए श्रीरामजी ने लक्ष्मण से कहा कि जटायुजी बहुत वर्षों से इस बन में रहते थे, रे लिये ही अपना पारम्परिक राज्य ही नहीं अपितु प्राण त्याग दया। मनुष्यों में तो शूर, शरणागत रक्षक धर्मात्मा श्रेष्ठ पुरुष तो सब जगह देखे ही जाते हैं। पशुपक्षियों में भी उनका अभाव नहीं है। मुझे सीता हरण का उतना दुख नहीं हो रहा है जितना कि जटायु से हो रहा है। पिता श्रीदशरथजी के समान ही जटायु जी मेरे लिये पूज्य हैं। लक्ष्मण ! उत्तम-उत्तम सूखी लकड़ियां बटोरो इनका अग्नि संस्कार करूँ।--

तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमः।
रामः सु बहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥१९॥
बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम्।
अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥२०॥
अनेकवार्षिका यस्तु चिरकाल समुत्थितः।
सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥२१॥
पश्य लक्ष्मण गृद्धोऽयमुपकारी हतश्च मे।

सीतामभ्यवपन्नोहि रावणेन बलीयसा ॥२२॥
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् ।
मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥२३॥
सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।
शूरः शरण्यः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥२४॥
सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् ।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥२५॥
राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः ।
पूज्यनीयश्च मान्यश्च तथाऽयं पतगेश्वरः ॥२६॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं हि धक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥२७॥
नाथं पतगलोकस्य चितिमारोपयाम्यहम् ।
इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ॥२८॥
(वा० रा० ३।६८।१६-२८)

जब गृद्धराज ने दिव्य चतुर्भुज रूप से श्रीरामजी की स्तुति—
जयराम रूप अनूप ····जासु कीरति पावनी ।
किया तो श्रीरामजी ने कहा कि हे महाबली गृद्धराजजी यज्ञ करने वाले अग्निहोत्री, युद्ध में पीठ न दिखाने वाले और भूमिदान करने वाले पुरुषों को जिस उत्तम गति की प्राप्ति होती है, उसी उत्तम लोक मेरे धाम को जाओ--

तनु तजि तात जाहु मम धामा । (रा० च० मा०)
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः ।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥२९॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराज महासत्व संस्कृतश्च मया व्रज ॥३०॥
(वा० रा० ३।६८।२९-३०)

विहंग योनि आमिष अहार पर गीधकवन ब्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भांति सँवारी
(विनय पत्रिका पद १६७)

अविरल भक्ति मांगि वर गीध गयउ हरि धाम।
तिहिकी क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम ॥

यथोचित क्रिया का विवरण वाल्मीकीय रामायण में विस्तार से दिया है कि श्रीराम ने अपने हाथ से जटायु को चिता पर रखकर उसमें आग लगाई और जो मन्त्र ब्राह्मण लोग मृतक संस्कार के समय पढ़ते हैं उन मन्त्रों का जप किया। तत्पश्चात् बड़े पेड़ों पर चढ़ी हुई मोटी लता वाली महारोही (गजकन्द) की लता काटकर उसके नीचे की कंद लाकर उसका गूदा निकाला, फिर हरे कुश बिछाकर उस पर वह गूदा रखकर जटायु के निमित्त पिण्डदान किया। तत्पश्चात् दोनों भाई गोदावरी में स्नान करके शास्त्रीय विधि से जटायु के निमित्त तर्पण जलाञ्जलि आदि करके पक्षिराज की चर्चा करते हुए श्रीसीताजी की खोज में आगे बढ़े—

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम्।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥३१॥
रामोऽथ सह सौमित्रिर्वनं गत्वा स वीर्यवान्।
स्थूलान् हृत्वा महारोहीननुतस्तार तं द्विजम् ॥३२॥
रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशः।
शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥३३॥
यत् तत् प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः।
तत् स्वर्गगमनं पित्र्यं तस्य रामो जजाप ह ॥३४॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजः।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥३५॥

शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ ।
स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥३६॥
स गृध्रराजः कृतवान् यशस्करं सुदुष्करं कर्म रणे निपातितम् ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यं गतिमात्मनः शुभाम् ॥३७॥
कृतोदकौ तावपि पक्षिसत्तमे स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥३८॥
(वा०रा० ३।६८।३७।३८)

यथोचित क्रिया के सम्बन्ध में अध्यात्म रामायणकार ने लिखा है कि श्री रामजीने जटायुकी तेरही के दिन जटायु के जाति बन्धुओं गोध, भास (चील्ह), श्येन (बाज), कंक (बरही) आदि मांसाहारी पक्षियों को भोज दिया अर्थात् मांसाहारी मृग (पशु), शेर, चीता आदि मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े करके बिखेर दिया कि पक्षिराज जटायु के सजातीय पक्षी खाकर तृप्त हो जायँ।

हत्वा वने मृगं तत्र मांसखण्डान् समन्ततः ।
शाद्वले प्राक्षिपद्रामः पृथक् पृथगनेकधा ॥
भवन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्ता भवतु पक्षिराट् ॥
(अध्यात्मरामायण ३।८।३८,३९)

शंका २६

शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय। भूप सुसेवित बश नहिं लेखिय।
राखिय नारि यदपि उर माहीं। युवती शास्त्र नृपति बश नाहीं॥

यहां पर जगदम्बा के प्रति आक्षेप तो नही है? अथवा यह चौपाई क्षेपक तो नहीं है। (पं० रामरक्षित शुक्ल)

समाधान

कामद कुटी के द्वार शुभ्र बट वेदिका पै,
बैठे रघुचन्द मंद-मंद मुसकात हैं।

जाहि देखि जनक लड़ैतो मन बारि, बारि-
देत तुलसी में पै न सम्हरो सुगात है ॥
पांय पास मृगी छौंना खेलै तापै षरो बारि-
भगो अरु झानो पग सीय झिझकात हैं।
लखन 'कुमार' किलकारि हँसे तारी मारि,
त्रैनुख निहारि मम प्रान सरसात हैं ॥

जिज्ञासित चौपाइयों को अभी तक तो किसी ने क्षेपक माना ही है, और मेरी दृष्टि में भी ये दोनों चौपाइयां क्षेपक नहीं । यह सही है कि दुष्टों ने समस्त तुलसी साहित्यको एकमात्र मवाणी का रूप देने एवं मनमानी पाठ रखनेके लिये गोस्वामी ी के कर कमल से लिखित उनके समस्त काव्य ग्रन्थों को नष्ट र दिया और कई क्षेपक मूल के नाम से प्रचलित कर दिया ौर पाठ भ्रष्ट तो किया ही है । क्या कारण है कि गोस्वामी ी के हाथ से लिखा पंचनामा और वाल्मीकीय रामायण की तिलिपि तो प्राप्त है, परन्तु उनके स्वनिर्मित काव्यों में से किसी न्थ का एक पन्ना भी तो उनके हाथ का लिखा नहीं मिलता दि दुष्टों ने नष्ट नहीं किया तो क्या हुये ? जबकि छठवीं और ाँचवीं शताब्दी तक की लिखित पुस्तकें मिली है । अस्तु कहा ाता है कि जिज्ञासित दोनों चौपाइयाँ जिस श्लोक के अनुवाद वह किसी शुक्रनीति का निम्न श्लोक है—

शास्त्रं सुचिंतितमपि प्रतिचिंतनीय-
माराधितोऽपिनृपतिः परिशङ्कनीयः ।
अङ्के स्थितापि युवतिः परिरक्षणीया,
शास्त्रे नृपे च युवतौहि कुतो वशित्वम् ॥

यही सुभाषित रत्न भाण्डागार के तृतीय प्रकरण के सामान्य

नीति में ६६२ वां श्लोक है। पर वहां दो स्थलों पर अन्य पाठ
हां श्लोक में युवती का अन्तिम तृतीय स्थान है। और चौ
में अवश्यत्वमें प्रथम स्थान है सो प्रसङ्ग की प्रधानताके कारण

बहुत ख्यात नीति का श्लोक है कि—
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु स्थविरे भावे न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति॥
(सु.र.भा.प्रा. ३ सा.नी. ५७५

बालिका भय एवं अबोधता के कारण पिता आदि गुरुजनों
अधीन रहती है और वृद्धा को असामर्थ्य एवं स्वार्थ के का
पुत्र के आश्रित अथच आधीन होकर रहना पड़ता है, परन्तु भा
युवती धर्म भाव के कारण ही पति को परमेश्वर मानकर उ
अधीन रहती है। जिस युवती में रमा के समान शील, सर
के समान वाग्मिता और दुर्गा के समान प्रचंड तेज रहता है
पति हृदय विहाररिणी होते हुए भी पति तक में अन्याय
कर कड़े शब्दों में विरोध करती है।

मानवीय लीला के कारण जगदम्बा श्री सीताजी में
तीनों गुण समय-समय पर व्यक्त होते रहे हैं। चौपाई में
नाहीं का तात्पर्य शील भङ्ग से नहीं है, अपितु शास्त्रके विस्मृ
से, शाशकत्व के कारण भूप के व्यवहार स्वातंत्र्य से और
कारण अन्याय का प्रतिवाद करने एवं धर्मभाव प्राधान्य के व
युवती के "बस नाहीं" रहने का तात्पर्य है। इसीकारण श
स्थ "परिशङ्कनीया" और "परिरक्षणीया" को यहां न
केवल "कुतोवशित्वम्" 'बसनाहीं" मात्रको ही लिया है और
नहिं लेखिय" कह कर पुनरुक्त होते हुये भी "बस नाहीं" ही
श्री रामजी को ज्ञात है कि अपना धर्ममय तेज स्मर

रण जनकनन्दिनीजी समय पड़ने पर वाग्बज्र प्रहार करने से ीं चूकती हैं। जैसे-

प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिक्षेप राघवम् ॥
किं त्वा मन्यत बैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
रामं जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषबिग्रहम् ॥२॥
तेजो नास्ति परंरामे त तीव दिवाकरे ॥३॥

बाल्मी० रामा० अयोध्याकाण्ड सर्ग तीस)

आरण्यकांड का नवाँ सर्ग सम्पूर्ण रूप से उद्धृत किया जा कता है, और सुन्दर काण्ड का सम्पूर्ण इक्कीसवां सर्ग तो उदाहरण रूप में है ही।

रामजी के—

क सुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात बचन ममपेली॥
शिचर निकर फिरहिं बनमाहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥

ने पर लक्ष्मण जी ने जब:-

कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी।

अपनी निर्दोषिता में सीताजी के मर्म बचन बोलने तथा द्धि' त्रिवेक वल और समय को बिचार कर अभिमंत्रित रेखा ींचने की बात भी बताई तो आश्रम में लौटने पर—

आश्रम देखि जानकी हीना।

स समय तो श्रीराम जो--

भये विकल जस प्राकृत दीना।

कुछ कालोपरान्त जब शोक बेग कुछ कम हुआ और गृद्धापति जटायु से रावण कर्तृक सीता हरण सुना--

थ दशानन यह गति कीन्ही। तिहि खल जनक सुता हरि लीन्ही॥

तो श्रीरामजी ने विचार किया कि रावण या कोई भी प्राणी

रेखा के भीतर जा नहीं सकता था और सीता यदि वश में रहतीं अर्थात् लक्ष्मण की बात और अभिमन्त्रित रेखा की मर्यादा मानतीं तो बाहर आतीं ही नहीं। वेदज्ञ रावण सबिधि सिद्ध किये हुए वेद मन्त्र की शक्ति को जानता है। अतः वह रेखा के भीतर जा नहीं सकता था। इसीसे लंकेश्वरी ने रावण से कहा था कि-

रामानुज लघुरेख खँचाई। सो नहिं लांघ्यो असि मनुसाई॥

अतः सीता यदि रेखा से बाहर न निकलतीं तो रावण उनका हरण नहीं कर सकता था। यही "युवती बश नाहीं।" का तात्पर्य है। अन्य कोई आक्षेप जगदम्बा पर नहीं है और यह कह कर श्रीरामजी ने लक्ष्मण की निर्दोषिता स्वीकार किया है। अभिमन्त्रित रेखा खींचने और उस रेखा के महत्त्व का वर्णन वेद में जिस जगह है वह संदर्भ सहित पहले ही समाधान में दिया जा चुका है।

शंका ३०

पूजिय विप्र शील गुन हीना। शूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना।

एक योग्य शूद्र क्यों नहीं पूज्य है और एक अयोग्य नालायक विप्र क्यों पूज्य है? क्या यह तुलसीदासजी की स्वजाति पक्षपात और शूद्रों के प्रति ईर्ष्या द्वेष और घृणा की भावना की निशानी नहीं है? (डा० राजेन्द्रप्रसाद सिनहा)

समाधान

बामन बपु जिहि वन्श धारि हरि सुर दुख टारचो।
परशुराम जिहि वन्श प्रगटि खल नृप सहारचो॥
जिहि कुल जिन सुत बुद्ध राक्षसन मति भ्रम पारचो।
कलि नाशन जिहि कुलहिं कलिक बपु धरन विचारचो॥
श्रुति पथ रक्षक जौन कुल विप्र "कुमार" सुशान्त मन

रामभक्त तिहि कुल जितक तिन पद बन्दहुँ मन बचन ॥

यह ठीक है कि गो० तु०दा० जी का जन्म विप्र कुल में ही हुआ था, परन्तु यह ठीक नहीं है कि उन्होंने विप्र जातिका पक्षपात किया है जिससे उक्त चौपाई लिखा। क्योंकि मानस की रचना काल तक गो०जी जातिबाद से बहुत ऊँचे उठ गये थे; विरक्त हो गये थे और विरक्तों में कोई जाति होती ही नहीं। क्योंकि उनकी विरक्त-साधु-सन्यासी आदि संज्ञा होती है। जो विरक्त अपने पूर्वाश्रम सम्बन्धित जाति-वर्ण को मानता है वह च्युत हो जाता है अपने को अच्युत गोत्रीय कहने का अधिकारी नहीं रहता और जो विरक्त या गृहस्थ किसी विरक्त साधु को उसके पूर्वाश्रम के जातिवर्ण के भाव से देखता है वह स्वधर्म से पतित हो जाता है उसे स्वमातृगमन का पाप लगता है—

"तन्मातृयोनिपरीक्षया सममिति शास्त्रं बदति" ॥२०५॥

"श्रीबचन भूषण" के इस सूत्र के भाष्य में श्री बरबर स्वामीजी ने और श्री त्रिदण्डी स्वामीजी ने स्कन्द पुराण का निम्न श्लोक उद्धृत किया है कि—

अर्चावतारोपादानं वैष्णवोत्पत्तिचिन्तनम्।
मातृयोनिपरीक्षायास्तुल्यमाहुर्मनीषिणः॥

गो० जी विरक्त श्रीवैष्णव होने के नाते मानते और कहते थे कि—

"हौं न कोऊ जाति न चहौं काहू की जाति पांति०॥"

"अति ही अपानो उपखानो नहि बूझें लोग
साहिब को गोत गोत होत है गुलामको"

"धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौकोऊ।"

गो० जी की जाति तो विरक्त-साधु अच्युत गोत्रीय हो गयी थी, इसीसे वे कभी किसी जाति का पक्षपात किसीसे ईर्ष्या द्वेष

घृणा नहीं करते थे। उन्होंने जो गन्धर्व के प्रति श्रीरामजी की शिक्षा उद्धृत किया है वह किसी द्वेष या पक्षपात के कारण नहीं अपितु श्रीरामजी ने तो शास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार ही उस शापित गन्धर्व को समझाया था। शास्त्रों के कुछ उद्धरण देखिये—

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो विदुनोतिसर्वम्।
योब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य॥

(अथर्ववेद कांड ५ सूक्त १८, मंत्र ४)

(यः) जो व्यक्ति (ब्राह्मणम्) ब्राह्मणको (अन्नम् एवं मन्यते) अन्न अर्थात् खाद्य पदार्थ के समान तुच्छ समझ लेता है। (स) वह व्यक्ति (तैमातस्य) फनियर नाग के (बिषस्य) जहर का घूँट (पिबति) पी लेता है। क्योंकि जो ब्राह्मण के ऊपर किसी प्रकार का आघात करता है वह ब्रह्म तेज के कारण (वै) निश्चय ही सम्पूर्ण (क्षत्रं निः नयति) बाह्य बल का नाश कर देता है। और (वर्चःहन्ति) आन्तरिक तेज नष्ट कर देता है और बाहर (आरब्धः) ब्राह्मणापमान (अग्निःइव) आग के समान प्रज्वलित होकर (सर्वम्) लोक परलोक सबको (विदुनोति) सर्वथा नष्ट कर डालता है।

यह जाति पांति का झमेला भारतीय गृहस्थोंमें ही है क्योंकि भारत वर्ष सदैव से श्रुति शास्त्रानुयायी हैं और स्मृति एवं श्रुति जाति पांति को पूर्व जन्मार्जित कर्म का परिपाक मानती हैं। यथा धर्मचर्यया जघन्योवर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिबृत्तौ।१। अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो वर्णो जघन्यं-जघन्यं वर्णमापद्यते जाति परिबृत्तौ॥२॥ (आपस्तम्बः)

नीच जाति के लोग जब उत्तम रीतिसे स्वधर्म पालन करते हैं तो धर्म के अनुसार दूसरे जन्म में उत्तमजाति में परिवर्तित

जाते हैं और उत्तम जाति वाले लोग जब स्वधर्म विरुद्ध अधर्म
रते हैं तो उसीके अनुसार जघन्य नीच जातियों में दूसरे जन्म
परिवर्तित हो जाते हैं।

महर्षि आपस्तम्बका यह सिद्धान्त मनमानी नहीं है अपितु
ति ही ऐसा कहती हैं कि—

ा इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्
ह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं व वैश्ययोनिंवा । अथ य इह कपूय
ण अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन श्वयोनिं वा शूकर·
नि वा चाण्डालयोनिं वा॥

ामवेदीय तवलकारशाखा का छान्दोग्यब्राह्मण ५।१०।७)

श्रुति ने स्पष्ट शब्दों में पूर्व जन्म के उत्तम कर्मों को
त्व का और कपूय (गर्हित) कर्मों को शूद्रत्व का कारण माना है।
जिस वर्ण एवं आश्रम में है वह अपने वर्णाश्रम धर्म का विधि-
पालन करता है तो उसकी क्रमिक उन्नति होते-होते वह
र परम सिद्धि मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। गीता में भगवान्
मुख वाणी है कि—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते पराम् । (गीता १८।४५

अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् । (गीता)

व्यवहार वर्तमान को देखकर होता है सही परन्तु संस्कार
जन्म का ही होता है। जैसे कोई आज शूद्र या अन्त्य वर्ण में
ौर वह स्व वर्णाश्रमोचित कर्म करते हुये तप तीर्थ व्रत आदि
र्म में लीन है उन्नतिके सोपान पर आरूढ़ है तो समझना
हये कि गत जन्म में कपूयनिन्द्य कर्म करने से आज शूद्र योनि
ाप्त है परन्तु अब रमणीय आचरण सत्कर्म कर रहा है तो
े जन्म में रमणीय योनि द्विजत्व का अधिकारी बन रहा है,

और कोई आज द्विजाति वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण वर्ण में है औ
वह स्व बर्णाश्रमोचित कर्म की अवहेलना करके कपूयाचरण-निन्द
कर्म करता है तो वह अवनति के गर्त में पतित होता जा रहा
तो समझना चाहिये कि गत जन्म में रमणीय उत्तमोत्तम क
करने से आज उसने द्विजाति योनिका प्राप्त किया है परन्तु उ
कपूय निन्द्य आचरण करने के कारण अगले जन्म में निन्द्य यो
में पतित होगा। जैसा कि स्वयं भगवान ने कहा है—

क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु। (गीता० १६।१

मनुस्मति अध्याय२ का २८वां श्लोक है—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनुः॥

सारांश यह कि जो व्यक्ति जिस वर्ण या आश्रममें है उ
सविधि पालन से ही उस जीव की उन्नति है और न पालने
अवनति होती है इसी धर्म पालनके अनुसार दूसरे जन्म में वि
वर्ण-जाति में जन्म ग्रहण करता है—

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी। ईश देइ फल हृदय विचा

यही बात गीता में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः। गीता० १८

पूर्व जन्म के पुण्यकर्मानुसार इस जन्म में ब्राह्मणादि उ
वर्ण में जन्म हुआ और इस जन्म में यदि कपूय-अशुभ
करेगा तो भविष्य में निकृष्ट-चाण्डालादि योनियों में जन्म पा

अब समझिये कि एक विप्रकुलोद्भूत ब्राह्मण बन्धु
गुण हीन है स्व मर्यादा विरुद्ध कदाचारी है; इस वर्तमान को
कर जो ब्राह्मणेतर उसका जाति अपमान करता है तो वह उ
पूर्वजन्मार्जित सुकृत का अनादर करता है, जिसके परिणाम

रूप उसे आज विप्रत्व प्राप्त है और उसके पूज्य पद से उसे वंचित करता है ।

शील-गुण का अर्थ विश्वकोशमें इस तरह दिया है- शील (सं० क्ली०) आचरण, चाल, व्यवहार चरित्र । प्रवृत्ति सद्भाव, आदत, मिजाज २ । सद्‌वृत्त, उतम आचरण । ब्राह्मण्यादि तेरह प्रकार का धर्ममूल मनुस्मृतिटीका में कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकार के शील हैं । जैसे ब्रह्मण्यता, देव-पितृ भक्ति, सौम्यता, अपरोपतापिता, अनसूया, मृदुता, अपारुष्य मित्रता, प्रियवादित्व, कृतज्ञता, शरण्यत्व कारुण्य और प्रशान्ति । राग द्वेष त्याग का नाम शीलगुण है । (मनुष्मृति ६।३)

उत्तम स्वभाव, अच्छी प्रकृति, अच्छा मिजाज ४ । संकोच का स्वभाव मुरौवत५। दूसरे का जी न दुखे यह भाव, कोमल हृदय ६। प्रवृत्त, तत्पर, प्रवृत्ति वाला जैसे दानशील, पुण्यशील ।७। इसी तरह अनेक गुण सम्पन्न लौकिक व्यवहार ज्ञान प्रवीण शूद्र के वर्तमानगुण को देखकर जो उसका पूजन विप्रवत् करता है तो वह उसकी उन्नति को रोक देता है क्योंकि जब विप्रत्व का फल यहीं भोग लेगा तब अगले जन्म में किस बल पर विप्र शरीर प्राप्त करेगा ? स्मरण रखना चाहिये कि यहां 'ज्ञान प्रवीना' ज्ञान में प्रवीण कहकर लौकिक व्यावहारिक ज्ञान का ग्रहण किया गया है, पारमार्थिक आत्म परमात्म ज्ञान का मतलब यहां नहीं है। पारमार्थिक आत्म परमात्म ज्ञान में प्रवीण नहीं हुआ जाता अपितु वह, उस ज्ञान को प्राप्त करने वाला भाग्य भाजन-जन तद् ज्ञान मय हो जाता है और पुस्तकें पढ़कर आत्म परमात्म तत्त्व कथन में प्रवीणता वाक्य ज्ञान से कोई परमार्थिक लाभ तो होता ही नहीं-

वा ज्ञान अत्यन्त निपुण भवपार न पावै कोई ।

निशि गृह मध्य दीप की बातनि तम निवृत्त नहि होई।(वि.प.
वाचनिक ज्ञानी की तो गर्हणा की गई है।

विप्र और शूद्र के पूज्यापूज्यत्व के सम्बन्ध में विद्वान महानुभाव उदाहरण देकर समझाते हैं कि—

एक शास्त्री खण्ड या बी० ए० का विद्यार्थी यदि अपने पाठ्यग्रंथ कोर्स को तैयार नहीं करता प्रत्युत अपने ग्रंथ को फाड़ता रहता है तो उसे कक्षा से गिराया नहीं जा सकता, हाँ वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने पर वह अध्यक्ष द्वारा ही अलग किया जा सकता है अन्य से नहीं, वैसे ही एक सत्कुलोद्भूत विप्र शील गुण हीनत्व एवं कदाचार के कारण विप्रवंश गत पूज्यत्व से वंचित नहीं किया जाना चाहिये, हाँ दूसरे जन्म में श्रुति कथनानुसार ईश्वर द्वारा कपूय-निन्द्य योनि में पतित किया जायगा, अन्य किसी को उसका अपमान करने का अधिकार नहीं है—

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी। ईश देइ फल हृदय विचारी॥

इसी तरह एक प्रवेशिका या पांचवीं कक्षा का छात्र तो क्रमशः ही शास्त्री या बी० ए० का छात्र हो सकता है। आरम्भ में ही उसे शास्त्री खण्ड या बी० ए० क्लास में बैठा देने से कोई लाभ न हो सकेगा क्योंकि उसकी पहली पढ़ाई भी जाती रहेगी और उच्च कक्षा की योग्यता तो हो ही नहीं सकती।

इस तरह समाहित चित्त से समझने पर किसी गुण गण का अपमान एवं थोथी-निकम्मी रीति नहीं मालूम पड़ेगी।

जिस तरह अश्वत्थ, तुलसी एवं गो आदि अपना कल्याण साधन में असमर्थ हैं पर इनकी सेवा पूजा करने वालों का कल्याण होता ही है। उसी तरह शील गुण हीन विप्र अपना कल्याण तो नहीं कर सकता पर उसीकी पूजा करने वाले का कल्याण दैवी

ाधान से होता ही है ।

शंका–३१

म दर्शन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज स्वरूपा ॥

जीव का सहज स्वरूप क्या है ? क्योंकि तीनों अवस्था एवं ीनों गुणों से निर्मुक्त होने पर "सोऽहमस्मि" यह वृत्ति प्राप्त ोती है और तब ग्रन्थि के छूटने पर जीव मुक्त होता है । यह वस्था श्रीराम के दर्शन से कैसे प्राप्त हो जाती है ?

(रामप्रताप शरण श्रीवैष्णव)

समाधान

रामचन्द्रकथासिन्धून् मथित्वा तुलसी कविः ।
दर्शयन्परमं तत्वं चकार मानसामृतम् ॥

अध्यात्म शास्त्रों में अनेक स्थानों पर जीव का सहज स्वरूप ा तरह वर्णित है—

स्वय दास उरो अंसावपि ग्ध (ऋ० १।१५८।५)
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानम् (ऋ० २।११।२)
यस्यायं विश्व आर्यो दासः ॥ ऋ० ८।५१।६। यजुर्वेद ३३।८२।
प्र देवो दासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना। ऋ० ८।१०३।२।
ा नो दास आर्यो वा...... ऋ० १०।३८।३।
रं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय । भूर्णयेऽनागा (ऋ० ७।८६।७)
ह्म दाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मेव मे कितवाः । ब्रह्मसूक्त)
स्थूल सूक्ष्म कारणतो भिन्नं कोषाच्च पञ्चकात् ।
चिदानन्दमयं नित्यं कैशोरे वयसि स्थितम् ॥
द्विभुजं सत्वसम्पन्नं मायाविगतकल्मषम् (तत्त्वत्रयसार)
ाहं देहो न वै प्राणो न मनोऽहं न चेन्द्रियः ।

निरूपाधिकसत्वत्वाद्धरिदासोऽस्मि केवलम् ॥ तत्वविवेक

ईश्वर अंश जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
इत्यादि । आरण्यकाण्ड में श्रीमुख वाणी है कि—

मोरे प्रौढ तनय सम ज्ञानी । बालक सुत सम दास अमानी ।
जनहि मोर बल निज बल नाही । दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही ।
करौं सदा तिनकै रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी ।

तात्पर्य यह है कि ज्ञानी को अनेक कष्ट साध्य साधनों से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं वही सिद्धियां भगवद् भक्तों को इस लिए प्राप्त हो जाती हैं कि—सोऽहमस्मि" आदिक सारी सिद्धियों के प्रदाता एकमात्र—श्रीहरि ही हैं । अपनी वस्तु देने में तो स्वामी का ही अधिकार रहता है, वह चाहे जैसा--नियम बना ले श्रीरामजी ने अपना नियम बना रखा है। किंच घोषित भी कर रखा है कि अपने बल पर निर्भर रहने वाले स्वावलम्बियों (ज्ञानियों) को जो सहज स्वरूप बहुत कष्ट साध्य है अर्थात् ज्ञान दीप को पूर्ण प्रज्वलित करके उस दीप को--सुरक्षित रखकर उस प्रकाश में जड चेतन ग्रन्थि के सर्वथा उन्मुक्त करके निर्ग्रन्थि हो जाने पर (जिस सहज स्वरूप की) उपलब्धि करते हैं वही सहज स्वरूप अपने अनन्य भक्तों को अपने नाम जप मात्र से एवं अपने दर्शन मात्र से करा देते हैं ।

श्रुतियों में दोनों तरह के संकेत हैं--

धर्मं मार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः ।
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं स्वस्य पूजनात् ॥ रा०ता०पू० १।
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥
(मु० उ० ३।१।३

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥
(मु० उ० २।२।८)

जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति बीतशोकः ।
(मु० उ० ३।१।२)

मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

यह उनका वर्णन है जो प्रभु पर निर्भर रहते हैं;अपने बल का भान तक नहीं रहता, जिन्हें--

तुलसी रहत निशोच राज ज्यों बालक माय बबाके। (वि०प०)

उन्हें भगवद्दर्शन भगवत्कृपा से ही हो जाता है और दर्शन होते ही--

पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति। (मु० उ०)

और जो अपने बल पर रहते हैं वे अपने साधनों द्वारा जब निष्काम हो जाते हैं--उनकी सभी कामनायें नष्ट हो जाती हैं पुण्यकिंवा पाप दोनों में से किसी का लेश मात्र भी नहीं रह जाता है तब वह ज्ञानी पुरुष मुक्त होकर दिव्य चिदानन्दात्मक सहज स्वरूप को प्राप्त करता है, मुक्त होता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते। कठ० उ० २।६।१४
यदासर्वे प्रभिद्यन्तेहृदयस्येह ग्रंथयः।
अमर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् ॥ कठ० उ० २।६।१५
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्द रूपममृतं यद्विभाति ॥
(मु० उ० २।२।७)

सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता (तै० उ० ब्र० ५ १)

इन उभय विधि श्रुतियों का निष्कर्ष ऊपर बताया जा चुक
है कि जो फल ज्ञानियों को सम्पूर्ण साधनों की निर्बिघ्न प
समाप्ति पर होता है--

जो निर्विघ्न पन्थ निर्वहई। सो कैवल्य परम पद लहई ॥

वह फल एवं उससे भी महत्तम फलावाप्ति अनन्य भगव
भावापन्न भगवद् भक्तों को भगवत्कृपा कटाक्ष मात्र से--

अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

शंका ३२

श्रीराम ने शबरी को किस भाव से अपनाया था? पह
तो यही सुनने में आता रहा कि जटायु और शबरी का भ
दशरथ कौशल्या के समान वात्सल्यमय था। परन्तु अब कुछ लो
कहने लगे हैं कि शबरी का शृङ्गार-सखी भाव कान्ता-भाव था
अब शंका हो गई कि कौन बात ठीक है।

(रामायणी रामगोपालदास शास्त्री

समाधान

सियपदपद्म प्रणाम करि गुरुपद रज शिर धारि।
लिखत समाधानहि उचित बहु शुचि ग्रंथ बिचारि॥

शान्त, वात्सल्य, दास्य, शृङ्गार और सख्य, भक्ति के
रसात्मक भेद न मालूम कब से चले आते हैं। वात्सल्य, द
और सख्य के तो प्रचुर प्रमाण मन्त्र संहिताओं वेदों में ही
भगवान पांचों रसों की भावना से एक समान ही प्रसन्न हो
यह निर्विवाद सिद्धांत शास्त्र सिद्ध है। इसीसे सच्चे भावुक
कभी दूसरे भाव के उपासकों से द्वेष नही करते, अपितु प्रे
करते हैं। तथ्य तो यह है कि परम प्रभु जिसको जिस रू
स्वीकार करना चाहते हैं उसके हृदय में वैसी ही निष्ठा उ

कर देते हैं—

दधामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते । (गीता)

परन्तु आजकल तो सभी देखते और अनुभव करते हैं कि--

कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा ।

की चरितार्थता पूर्ण रूपेण हो रही है । कलि का प्रभाव इस क्षेत्र में भी विजयी होता चला जा रहा है । आज हम विरक्त अथ च भावुक कहाने वाले लोग इसलिये भी एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं, ईर्ष्या द्वेष करते रहते हैं कि जिस भावना को मैं मान रहा हूं, दूसरे लोग इससे भिन्न भावना को क्यों मानते हैं, और द्वेष भावना को हृदय में ही दबा रखें या मौखिक प्रगट करके ही सन्तोष धारण कर लें सो बात नहीं; प्रत्युत एक दूसरे के प्रति निन्दा, आक्षेप, अपशब्द गाली आदि भी लिख कर छाप कर अपने हृदय का परिचय देते फिरते हैं । हमारे घर में ही 'सुन्दर मणि सदर्भ सख्य सिन्धुचन्द्रोदय', 'उपासना तत्व विवेचन', 'शृङ्गार सूर्योदय' आदि पुस्तकें इसके उदाहरण प्रस्तुत हैं । एक निष्ठा-भावना वालों में भी शिया-सुन्नी की तरह चन्द्रकला और चारु-शिला के आचार्यत्व को लेकर नोटिस बाजियों से ऐसी गाली गलौज जूती पैजार होती रहती है कि प्रमत्त भटियारिनें कंजडिनें भी मात हो जाती हैं । ऐसे लोग दो ही बात का प्रचार करने की चेष्टा किया करते हैं ।

एक तो यह कि जिस भावना से हम भगवदुपासना का ढोंग करते हैं यही मार्ग, यही भाव प्रशस्त है, इसीसे ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है इसी मात्र से ही भगवान प्रसन्न हो सकते हैं । अन्य सभी भाव-निष्ठा अप्रशस्त हैं, अन्य प्रकार से भगवत्प्राप्ति नहीं होती क्योंकि अन्य भाव से प्रभु प्रसन्न ही नहीं होते । दूसरी बात

यह है कि पूर्वकाल में जितने भी अच्छे अच्छे प्रेमी, भावुक, सिद्ध
मुक्त, जीवन मुक्त आदि भगवत्कृपापात्र भक्त हो गये हैं उन सब
को भावना यही थी जो आज मेरी है। ऐसे ही आप लोगों में
कइयों की वक्र दृष्टि रामचरित के कवि एवं पात्रों पर भी पड़
करती है, जिससे कभी कभी अर्थ के शुचि सिंहासन पर अन
का अड्डा जम जाता है। इन भले लोगों ने स्वयं पद्य गढ़ क
अग्रदासजी को अग्रअली तो बना ही डाला है। श्रीहनुमानजी श्री
लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नजी आदि भाइयों को भी अपने भाव में
सिद्ध करने के लिये अनेकों कल्पित ग्रन्थ रच रच कर हनुमान
को चारुशीला, लक्ष्मणजी को लक्ष्मणासखी आदि नामों से कल्पि
कर लिया है। यही नहीं जटायु और शबरी को भी कान्ताभा
में सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। आज तो शबरी, ह
मान, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि को कान्ता भावासक्त क
ही हैं, कल को सम्भवतः वामदेव, वशिष्ठ, बाल्मीकि, व्यास, द
रथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सुमन्त्र, विभीषण; सुग्रीव, अंग
लव, कुश आदि को भी कान्ता भावासक्त कहने लगें तो
आश्चर्य नहीं। ऐसे ऐसे अनर्थों की योजना आजकल जोरों पर है

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः। (सुभाषित संग

उसी अनर्थ योजना के कोश से एक उदाहरण यहां
जाकर उस अनर्थ का परिहार भी करने की चेष्टा की जा
है उसी में आपकी शंका का समाधान भी हो जायगा।

श्रीजानकी शरणजी 'स्नेहलता' जी ने सं० २००३ वि
'मानस अभिप्राय दीपक चक्षु' नाम की पुस्तक छपाई
लिखा है कि "शबरी का भाव प्रथम तो वात्सल्यमय था

श्रीरामजी का मुख देखते ही वह भाव 'कान्ता भाव' में परिणत हो गया, इसी से श्रीरामजी ने उसे तीन बार भामिनी और एक बार करिवर गामिनी कहा और अन्त में अपने बाम पाद के अँगूठे के पीत चिन्ह में लीन कर लिया अर्थात् बामाँगी का स्थान दिया।' आदि इधर सम्भवतः सन् १९६७ ई० से पुनः इसपर बाद-विवाद चलने लगा है। पर कई संस्कृतानभिज्ञ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं "मैंने तो अमुक ग्रन्थ या लेख देखा ही नहीं" किन्तु दूसरों के लेखों को काट छांट कर अपने नाम से लिखा करते हैं। कई लोगों ने मेरे भी कई लेखों की ऐसी कपाल क्रिया किया है।

श्री स्नेहलता जी और उनकी नकल करने वालों का यह कहना है कि 'भामिनि' सम्बोधन एकमात्र अपनी पत्नी या प्रेयसी का ही दिया जाता है माता आदि अन्य किसी भी स्त्री को भामिनी सम्बोधन देने का कोई भी शास्त्रीय अधार नहीं है, अतः जहां कहीं भी किसी को भामिनि कहते पाया जाय वहां किसी प्रकार का ननु नच किये बिना ही मान लेना चाहिये कि वह उसे पत्नी भाव से ही भामिनी कह रहा है, इत्यादि। अतः इस अनर्थ मूलक बात पर विचार कर लेना चाहिये कि क्या सचमुच 'भामिनि, गजगामिनि, सुन्दरि, कान्ते, मृगनैनी" आदि शब्द एकमात्र पत्नी ही के लिये नियत हैं किंवा 'माता' भगिनि, कन्या आदि स्त्रियों को भी उन शब्दों से सम्बोधित किया जा सकता है।

परमधार्मिक ग्रन्थ पुराणरत्न श्रीमद्भागवत के देखने से पता चलता है कि अपनी जन्मदायिनी माता के लिये 'भामिनी शब्द का प्रयोग किया गया है। स्वयं भगवान् कपिलदेवजी ने अपनी सगी माता देवहूति को दो बार 'भामिनी' शब्द से सम्बोधित किया है। यथा—

१-भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते (भाग० ३।२९।७)
२-श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ (भाग० ३।३२।११

यही नहीं 'साध्वि' सम्बोधन भी कपिल जी ने माता देवहू के लिये किया है—

त एते साध्वि !' सर्वसंग विवर्जितः । (भाग० ३।२५।२

परम भगवद्भक्त गन्धर्वराज चित्रकेतु जगज्जननी भवानी ज को भामिनी कहकर सम्बोधित किया था ।

अतः प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ! (भाग०६।१७।२

जानकी स्तवराज में तो श्रीजानकी जी को शिव जी ने-

ज्ञानं दृढ़ं भवति भामिनि ! रामरूपे । (जान० स्त० ३६)

भामिनी शब्द से सम्बोधित तो किया ही यहाँ तक कह दिया कि

चक्राभहारिसुनितम्बयुगं भवत्या० । (जान० स्त०७

श्री शुकदेवजी ने माता यशोदाजीको भामिनी कहा-(भाग.१०।७।

एकदाऽर्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥'

राजमन्त्री श्रीसुमन्त्र जी ने महारानी श्रीकैकेयी जी को भामि कहा था—

अश्रुत्वा राज बचनं कथं गच्छामि भामिनि ! (बा०रा.२।१४।६

सभी विद्वानो को ज्ञात है कि सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ के रचयिता महापण्डित श्रीभास्कराचार्य की अँगजा पुत्री परम बिदुषी लीलावती थी, जिसे गणित पढ़ाने के लिये ही भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्त शिरोमणि के लीलावती खण्ड की रचना किया है। समे उन्होंने कई बार अपनी खास पुत्री लीलावती को ही 'बाले मृगाक्षि, बालकुरंग लोल नयने, कल्याणिनि, चापलाक्षि, चंचलाक्षि, कान्ते, अलि'' आदि कहा है, जो आजके भामिनी सम्बोधन से

र्गा भाव मानने वालों को दृष्टि में सिवाय पत्नी के अन्यों के लिये हो ही नहीं सकता। देखिये लीलावतीके श्लोक और रेखांकित शब्दों पर ध्यान दीजिये—

बाले! बालकुरङ्गलोल नयने! लीलावति! प्रोच्यतां,
पंचत्र्येकमिता दिवाकरगुणा अंकाः कति स्युर्यदि।
रूपस्थानविभागखण्डगुणने कल्पाऽसि कल्याणिनि,
छिन्नास्तेन गुणेन च प्रगुणिता जाताः कति स्युर्वद॥
(गुणन-प्रकारे)

पंचांशोऽलिकुलात् कदंबमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रत्रयो
र्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि कुटजं दोलायमानोऽपरः।
कान्ते! केतकिमालती परिमल प्राप्तैककालप्रिया—
दूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृंगोऽलि संख्यां वद॥ (इष्ट-कर्मणि)

अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ,
निखिलनवमभागाश्चालिनी भृंगयेकम्।
निशिपरिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं,
प्रतिरणति रणन्तं ब्रूहि कान्ते! ऽलिसंख्या॥ (गुणकर्माणि)

अध्यात्म रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग सात श्लोक सड़सट में है कि श्रीरामजी ने कौशल्या (जन्मदायिनी) माता को भामिनी शब्द से सम्बोधित किया।

स एवाव्यभिचारी योगो भक्तिमार्गस्य भामिनि! (अध्या.रा.७।७।६७)

अब मैं श्री रामचरित्रके आदि काव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में भी दिखाना चाहता हूँ कि जो अपनी जन्मदात्री जननी तो नहीं है परन्तु उनके साथ मातृत्व सम्बन्ध ही है, वहां किसी अन्य प्रकार के सम्बन्ध की कल्पना करना भी घोरातिघोर पाप है। वहां भी 'भामिनि, मृगनेत्री, सुन्दरी, श्यामा,

कमलाक्षी और बरारोहे अर्थात् श्रेष्ठ चाल चलने वाली करिवर गामिनी आदि शब्दों द्वारा सम्बोधन मिलता है। इन उपयुक्त शब्दों को श्रीहनुमानजी ने जगज्जननी श्रीसीता जी के लिये ही प्रयुक्त किया है। श्रीसीताजी का प्रथम दर्शन होते ही श्री हनुमान जी ने स्वागत रूप से कहा कि—

राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा। १६।५
अस्याहेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता॥ (१६।१२)(वा.रा.सु.व

दर्शन होने के पहले सीताजी को लंका में ढूँढ़ते हुये कहा था।
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी॥ (११।२)

दर्शन होने पर स्वयं श्रीसीताजी से हनुमान जी ने कहा कि
का नु पद्मपलाशाक्षि०। (३३।३) का त्वं भवसि शोभने। (३३।
वरानने! वरारोहे! (३३।६)

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता (३५।११)
त्वामादाय वारारोहे स्वां पुरीं नायिता ध्रुवम्। (५६।?)
राघवस्त्वां वारारोहे स्वां पुरीं नयिता ध्रुवम्॥ (६७।२६)
इदं मुहुर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि॥ (६७।२७)

अन्य विशेषणों के अतिरिक्त तीन बार 'भामिनी' कहा। सीता को हनुमान जी ने और लंका से लौटने पर हनुमान जी ने युवराज अंगद से सीताजी के सम्बन्ध में बताया कि—
अदूराच्छिशुपावृक्षात् पश्यामि वरवर्णिनीम्।
श्यामां कमलपत्राक्षीं ·········· ··············· ···· (५८।५६)
कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया। ४८।३१

कथञ्चिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुत्पादितामया । ५९।२९

सुग्रीव ने भी जानकी जी को भामिनी कहा था—

क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च भामिनी । बा०रा० ४।५।१६

शिवजी ने जानकी जी को भामिनी कहकर संबोधित किया—

ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे। जानकीस्तवराज ॥

इन सब प्रमाणों को देखकर कौन कह सकता है कि 'भमिनि' आदि सम्बोधन एकमात्र पत्नी के लिये ही प्रयुक्त होते हैं, अन्य के लिये नहीं ? क्योंकि लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री थी। देवहूति कपिलदेव जी की माता ही थीं। महारानी कैकेयी भी सुमन्त्र के लिये मातृ-तुल्य ही थीं। सुग्रीव जी, शंकर जी और हनुमान जी, सीताजी को सदैव माता ही मानते रहे, इन सब की मातृत्व-भाव से अन्य भाव की कल्पना करना भी गुरुतर पाप है। दुराग्रही मूर्खों का कहना है कि तुलसीदास जी भले नाना पुराण निगम आगम आदि आदि प्रमाण मानते रहे हों परन्तु हमतो रामचरित मानस के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों की कौन कहे तुलसीदास जी की गीतावली आदि को भी प्रमाण नहीं मानते। ऐसे अक्षरप्रेतों के लिये मैं रामचरित मानस' का भी एकाध प्रमाण देता हूँ कि पुरुष ही नहीं अपितु स्त्रियां भी स्त्रियों को भामिनि शब्द से सम्बोधित करती हैं। मंथरा ने दो बार कैकेयी जी को 'भामिनी' कहा था—

रेख खँचइ कहौं बल भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। है तुम्हारी सेवा बस राऊ ॥

आदि काव्य में मंथरा ने कैकेयी को 'भामिनि कहा है—

नहि राज्ञः सुताः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति भामिनि ॥ बा.रा.२।८।२३

महारानी कैकेयीजी की सखियों ने भी रानी को भामिनी कह—

.. .. समुझि धौं जिय भामिनी ।
सखिन सिखावन दीन्ह ॥

मन्थरा और सखियों के 'भामिनी' कहने से यह तो माना ही नहीं जा सकता कि मन्थरा और सखियों ने अपने में पुंस्त्व भाव का आरोपण करके महारानी कैकेयीजी को पत्नी भाव से देखते हुये उन्हें भामिनी कहा हो। अतः निष्कर्ष यह है कि—

"भामिनी, गज-गामिनि, करिवर-गामिनी, मृग-नैनि, सुन्दरि, कान्ते।" आदि शब्द स्त्रियों के आदर सम्मान के द्योतक रहे हैं जैसे कि आज श्रीमती सुश्री आदि शब्द हैं। किसी भी सम्माननीय स्त्री के प्रति उपयुक्त शब्दों का व्यवहार प्रयोग होता रहा है। चाहे वह माता, भगिनी, स्वामिनी, गुरुआनी किंवा विदुषी पुत्री या शिष्या हो किंवा पत्नी प्रेयसी अथवा पत्नी की सखी आदि हो।

आज से दो हजार वर्ष पूर्व महाकवि अश्व-घोष ने अपने 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य में भामिनी शब्द का अर्थ किया है कि जिसमें 'दीप्ति भा और मनस्विता' होती है वह स्त्री भामिनी कही जाती है यथा--

लक्ष्म्या च रूपेण च सुन्दरीति, स्तम्भेन गर्वेण च मानिनीति।
दीप्त्या च मानेन च भामिनीति, यातो बभाषे त्रिविधेन नाम्ना ॥
(सौन्दरनन्द सर्ग ४ श्लोक ३)

अब मैं यह भी दिखला देना चाहता हूं कि श्रीगोस्वामीजी ने श्रीरामजी का किस भाव से शबरीजी को स्वीकार करना लिखा है। 'ग्रन्थस्थग्रन्थांतरेका' तो सभी जानते मानते ही हैं, और श्रीतुलसी साहित्य मर्मज्ञों के अनुसार मेरी भी दृढ़ मान्यता है कि--

गीत कवित्त दोहावली विनयादिक सब ग्रन्थ ।

भानस भार्वाह लखन को तुलसी रच्यो सुग्रन्थ ॥
(लेखक के मानससिद्धांत से)

दर्शन के पहले प्रभु में शबरीजी का भाव सम्भवतः सेव्य-इष्टदेव का शांत रस मय रहा होगा परन्तु गीतावली आरण्य काण्ड में गोस्वामीजी ने वर्णन किया है कि श्रीरामजी के दर्शनोपरान्त शबरीजी में मातृ-वत् वात्सल्य भाव हो गया। यथा--

अनुकूल अम्बक अ ब ज्यों निज डिम्भ हित सबआनि कै।
(गीतावली आर० १७।३)

और श्रीरामजी ने भी शबरीजी को मातृभाव से ही सम्मानित किया--

'तिहि मातु ज्यों आदरी० ।' (गी० आ० १७।४)

इस पर भी दुराग्रही लोग कुतर्क कर सकते हैं कि यह तो प्रथम की बात है अर्थात् शबरी का तो प्रथम वात्सल्य भाव ही था, श्रीरामजी का मुख सौन्दर्य देखते ही कान्ता भाव हो गया, इसी से--

यं यं वापि स्मरन् भावं तजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितम् ॥

इस गीतोक्त भगवद्वाक्यानुसार उसे कान्ता का स्थान मिला। परन्तु यह कुतर्क भी नहीं चल सकता कारण कि शबरी के शरीर त्याग देने के बाद जब कि वह--

अति प्रीति मानस राखि रामहि रामधामहि सो गई।

उसके बाद भी श्रीरामजी का भाव शबरीजी के प्रति मातृत्व रूप से ही बना रहा तभी तो--

तिहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल अंजलि दई ॥
(गीतावली आर० ७।८)

श्रमणां चिरजीविनीं सतीं, शबरीमेत्य तया कृतार्हणः ।
नितरामभजद्रघूद्वहः प्रमदं मातृविलोकनोचितम् ॥
(महाकविमल्लिनाथकृतं रघुवीरचरितम् ७।११६)

अतः यह निश्चय है कि जिस तरह कपिलदेवजी, शिवजी, सुमन्त्रजी, सुग्रीवजी, और हनुमानजी आदि ने आदर भाव से भामिनी कहा है उसी तरह श्रीरामजी ने भी शबरी को मातृ-भाव से ही भामिनी और करिवर गामिनी कहा है। अन्य भाव की कल्पना करना भी महा पाप है जिसे श्रीरामजी कभी भी क्षमा नहीं कर सकते।

मेरे इस समाधान के मानसमणि में छपने के तीस बर्ष बाद ब्रह्मचारी श्रीरामजी शास्त्री व्याकरण साहित्याचार्य की "मानस की मणियां" (भाग २) प्रकाशित हुई है। उसमें "जे गावहि चरित संभारे।" को लेकर बहुत उत्तम ढंग से लिखा है कि--

एक दो पुरानी चाल के कथा वाचक भी ऐसे हैं जो मानस के द्वारा कूपमण्डूकता का ही प्रचार करते आ रहे हैं। वे बड़े गर्वीले स्वर में शाही फरमान के रौब में घोषित करते हैं 'राम चरित मानस केवल मानस' से लग सकता है, अन्य ग्रन्थ से नहीं उधार लेने वह जाता है जो दरिद्र हो, जिसके घर में हीरेमोती की खानें हों वह किसी से क्यों मांगने लगा, जो लोग मानस का अर्थ करने के लिए अन्य ग्रन्थों का उद्धारण देते हैं वे मानस जानते ही नहीं।

मेरी समझ में ऐसा कथन अविवेक पूर्ण तो है ही, प्रच्छन्न रूप से संस्कृत भाषा संस्कृत ग्रन्थों का ही अपमान नहीं करते अपितु गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रतिपादित सिद्धान्तों का भी खण्डन करना है। "नाना पुराण निगमागम सम्मत" कह कर

ो कवि पुङ्गव "क्वचिदन्यतोऽपि" कहना नहीं भूलता, उसके ानस को प्राचीन वाङ्मय से निरपेक्ष बताना एक अनोखा गूलर फूल सिद्ध करना, बुद्धि का दिवालियापन है। ऐसे लोग जब रभिनिवेश पूर्वक ऐसी बातें करते हैं तो उनके मूल में निज की ायोग्यता के आच्छादन का प्रयास स्पष्ट झलकता है। प्रायः समान ेत्र में बेसुरे, सुरीले लोगों की, संस्कृत ज्ञान शून्य, संस्कृतज्ञों की, ध्ययन शून्य, अध्ययनशीलों की निन्दा करते ही हैं।

ऐसे लोगों के सामने हम कुछ मानस से उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं, उन्हें पढ़कर अपने हृदय से पूछे कि क्या रामचरित मानस केवल मानस से लग सकता है ? या गोस्वामीजी के द्वादश ग्रन्थों से लग सकता है ?

सुन्दरी सुन्दर वरन सह, सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव उर चारिहु अवस्था विभुन सहित विराजहीं॥

उपरितन पथ में निर्दिष्ट चार अवस्थाओं का क्रमबद्ध प्रमाणिक विवेचन, अवस्थाओं का सम्बन्ध, विभुओं की परिभाषा उनका स्वरूप विभुओं के अवस्थिति-स्थान आदि तुलसी के किस ग्रन्थ से बताये जा सकते हैं ?

चौ०-साँख्यशास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्वविचार निपुन भगवाना॥

आचार्य कपिल को "तत्त्व विचार निपुण कहा" है। साँख्य शब्द के अनुसार तत्वों की संख्या, उनका प्रतिपादन एक वक्ता के नाते ज्ञातव्य है। तुलसी के मानस से इस चौपाई का सम्यक् प्रतिपादन कैसे हो सकता है ?

"ब्रह्म निरूपन धर्म विधि वरनहि तत्व विभाग"

केवल तुलसी ग्रन्थों का पाठक कथा वाचक-तत्त्व विभाग का विवेचन कैसे करेगा ?

"अहंकार शिवबुद्धि अज, मन शशि चित्त महान"
क्या कोई वक्ता केवल "मानस" के आधार पर इस अर्धाली की अभीष्ट व्याख्या कर सकता है ?

"आकर चार लाख चौरासी"

इस पंक्ति का आशय, कर्मानुकूल, गणनाबहुल जीव-जन्म का उक्त लेखा-जोखा विना शास्त्रान्तर के कैसे सिद्ध हो सकता है ?

"सप्तावरन भेद करि जहां लगे गति मोरि"
क्या तुलसी की किसी पंक्ति से सप्त आवरणों का उल्लेख, उनकी परिभाषा उनकी सीमा तथा उनकी कार्य-कारण की शृंखला को कैसे सिद्ध किया जा सकता है ?

मानस में यत्र-तत्र शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नारद, अगस्त्य आदि पौराणिक राजा एवं ऋषियों के नामों का उल्लेख हुआ है, उनकी मूल कथा का बोध क्या केवल मानस से हो सकता है ?

नान्दीमुखश्राद्ध, जातकर्म, चूड़ाकरण आदि मानस में निर्दिष्ट संस्कारों का बोध क्या तुलसी के किसी ग्रन्थ से हो सकता है ? चौ०-'पंच कवल करि जेवन लागे'। 'चारं भांति भोजन विधि गाई।

'छरस रूचिर व्यञ्जन बहुभांती' का विधान और व्याख्या क्या तुलसी बतायेगे, "पंच शब्द धुनि मंगल गाना" "नव सप्त साजे सुन्दरी', 'सोरह भांति पूँजि सनमाने' 'प्रगट चारि पद धर्म के' 'चारिहु चरन धर्म जग माहीं।' भूमि सप्त सागर मेखला' आदि बातों की व्याख्या तुलसी के किस ग्रन्थ से की जायेगी ?

'वीथी सीची चतुरसम" यह चतुरसम क्या है ?
सीताहरण के क्षणों में वे यह कहना नहीं भूलते—

"मरम बचन सीता जब बाली"
वे लक्ष्मणजी को भी अछूता नहीं छोड़ते हैं—

पुनि कछु लखन कही कटुबानी।
प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥

अथवा

लखन कहे कछु वचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥

और तो और मर्यादा के संकेतों का पूरा विवरण 'मानस' में पा सकते हैं ? जिसे सहस्रशः शास्त्रीय विवेचन मानस के प्रत्येक पृष्ठ पर भरे पड़े हैं, जिनकी व्याख्या तब तक सम्भव कहीं जब तक तत्सम्बन्धी ग्रन्थाकारों का सम्यक् अध्ययन नहीं किया जाता ।

हमने तो कुछ थोड़ से उद्धरण दिये हैं । धर्म, दर्शन, ज्योतिष कर्मकाण्ड एवं रामकथा की समग्र पूर्व परम्परायें मानस में सार रूप से सविनय संगृहीत हैं। बिना उनके अध्ययन के रामचरित मानस का कोई सही वक्ता नहीं बन सकता । इन सारी परम्पराओं की, व्यास, वाल्मीकि की, रामकथा के मूर्धन्य प्रतिनिधि महा-कवियों की अवहेलना करके तुलसीदास को सर्वथा अलग थलग करने का कुप्रयास जो वक्ता कर रहे हैं वे जाने अनजाने अपने अज्ञान पोषण के साथ-साथ ऋषियों की अमूल्य ज्ञाननिधि के प्रति, भारतीय संस्कृति और सभ्यता की आभा से भूषित प्राचीन गौरव-ग्रन्थों के प्रति उपेक्षा के भाव, उन्हें विस्मृत कर देने का वातावरण उत्पन्न करने का जघन्य अपराध कर रहे हैं ।

(मानस की मणियां, भाग २, पृष्ठ ४७-५१)

शंका ३३

जब तक सीताजी लंका में रहीं, क्या वहां कभी भोजन नहीं किया ?

(शम्भूप्रसाद तिवारी, कनवास, भुवारा, (शाहपुरा)

समाधान

ससुर-सखा, पितुसम सुख समुझि सीय हवि लीन्ह ।
दिव्य बसन नहिं मलिन मे अनुसुइया जो दीन्ह ॥

दाक्षिणात्य बाल्मीकीय रामायण आरण्य काण्ड में सर्ग छप्प के बाद और सर्ग सत्तावन के पहले छब्बीस श्लोकों का एक प्रक्षिप्त सर्ग है। उसका सारांश यह है कि अशोक बाटिका में वन्दि सीताजी के लिये ब्रह्मा ने इन्द्र के हाथ से दिव्य पायस भेज उसे एक बार खा लेने से कभी भूख प्यास लगे नहीं और शारिक शक्ति बल और सौन्दर्य अक्षुण्ण बना रहे—

ज़ाते लाग न क्षुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकाशा

श्रीसीताजी ने बहुत तर्क वितर्क और इन्द्र की परीक्षा क के बाद ही अपने श्वसुर के सखा द्वारा प्रदत्त वह पायस श्रीराम को अर्पण करके भक्षण किया था।

इन्द्र हस्ताद् गृहीत्वा च पायसं सा शुचिस्मिता ।
न्यवेदयत् भर्त्रे सा सलक्ष्मणाय मैथिली ॥२३॥
यदि जीवति मे भर्ता सह भ्रात्रा महाबलः ।
इदमस्तु तयोर्भक्त्या तदाश्नात् पायसं स्वयम् ॥२४॥
इतीव तत्प्राश्य हविर्वरानना जहौ क्षुधा दुःखसमुदभवं मतम्
इन्द्रात् प्रवृत्तिमुपलक्ष्य जानकी काकुत्स्थयोः प्रीतिमना बभूव।

शंका ३४

क्या प्रभु का नाम पहले पापनाशक नहीं था जो नारद ने मांगा कि— होहु नाथ अघ खग गन बधिका ॥

(लाल रुद्रनाथ सिंह पन्नगे

समाधान

प्रभु के नाम अनन्त है सबसे अधिक बखान ।
राम नाम को कहत है रिषि मुनि वेद पुरान ॥

जिस समय देवर्षि नारद जी ने माया मुक्त होने पर-

मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे । कह मुनि पाप मिटहि किमि मेरे ॥

कहा। इस पर श्रीहरि ने आज्ञा दिया "जपहु जाय शंकर शत नामा ॥

परन्तु नारद जी शंकर शत नाम जपे नहीं। अपितु—

सत्य लोक नारद चले करत राम गुन गान ।

अब पंपासर के किनारे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि—

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक ते एका ।।

राम सकल नामन ते अधिका ।। है-

विष्णोरेकैक नामैव सर्ववेदाधिकं मतम् ।

तादृङ् नामसहस्त्रैस्तु राम नाम समं मतम् ।।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।

सहस्त्र नामतत्तुल्यं रामनाम बरानने ।। (प०पु०)

राम नामोच्चारण का फल सभी नामो के जप से अधिक है; तो भी आपने मुझे शंकर शतनाम जपने की आज्ञा दिया था। परन्तु अनन्य वैष्णव होने के कारण मुझसे शंकर शतनाम का जाप नहीं हो सका और हो भी नहीं सकेगा। अतः आपसे प्रार्थना है कि-

होहु नाथ अघ खग गन बधिका ॥

हे नाथ आपही मेरे पाप का नाश कीजिये यदि राम नाम को सबसे अधिक होने का बरदान मांगते तो 'होई' कहते होहु न कहते। जैसे आगे के दोहे में "बसहु" कहा है वसइ वसहुँ नही कहा है।

'बसहुँ' गीताप्रेसी भ्रष्ट रामायण का पाठ हैं शुद्ध पाठ तो बसहु ही है।

शंका-३५

मैं प्रति वर्ष प्रयाग का कल्पबास माघ भर करता हूँ। वहाँ प्रति वर्ष अनेकों व्यासों की कथा मैं सुना करता हूं, कि जब

श्रीरामजी ने केवट राज गुह से कहा कि जब तुम हठ करते हो कि-

प्रभुसों निषाद ह्वै के बाद न बढ़ाइहौं। विनपगधोये.....।
तो "बेगि आनि जल पाँय पखारू" ॥

आज्ञा पाने पर वह जल खोजने लगा उसे कहीं जल मिला ही नहीं। हार कर गंगा जी का तुच्छ पानी ही लाया—

पानि कठौता भरि लइ आवा।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जू को ॥

जब प्रभु का पाँव पखार लिया तो वह पानी पवित्र जल हो गया। उसे गुह ने सपरिवार पी लिया। अब शंका होती है कि, शबरी को वहां किष्किन्धा के पास शुद्ध जल कहां से मिल गया जो "सादर जल लै पांव पखारे"।

क्या शबरी का लाया जल भगीरथ के लाये गंगा से पवित्र था? और हम लोग प्रति वर्ष प्रयाग में गंगा का तुच्छ पानी ही प्राप्त करते हैं? (रामबल्लभाशरण पथिक रामबन)

समाधान

विष्णुपादोदसञ्जाता शिवशीशविहारिणी।
भुक्ति-मुक्तिप्रदा गङ्गा सदैव शरणं मम॥

अनेक व्यास लोग जनता को रोचक लगने के लिये ही अनेक अनर्थक प्रलाप करते हैं और एक दूसरे की नकल करने वाले संस्कृत भाषा से दूर का भी परिचय जान पहिचान न होने के कारण, अर्थ का अनर्थ किया करते हैं। उन्हीं अनेक अनर्थक परम्पराओं में एक यह भी है कि, जल उत्तम शब्द है और पानी निकृष्ट शब्द है। मैं भी संस्कृत भाषा का भारी विद्वान नहीं हूं परन्तु बहुत दूर से किंचित् परिचय मात्र है, इसी से निम्नलिखित भाव समझ पड़ता है। यद्यपि जल और पानी पर्याय वाची शब्द

है दोनों शब्द एकही अर्थ के द्योतक हैं, दोनों में कोई शब्द निकृष्टोत्कृष्ट नहीं है। तो भी सज्जनतोष न्याय से दोनो शब्दों के अलग-अलग ये भाव हो सकते हैं।

'जल' घातने (भ्वा०प०से०) और 'जल' अपवारणे (चु.उ.से.) धातुओं से निष्पन्न जल शब्द का अर्थ है कहीं भी संलग्न विजातीय वस्तु का घात करके=नाश करके वहाँ से अपवारित कर देना, हटा देना शायद इसीलिये श्रीरामजी ने निषाद राज गुह से कहा हो कि जल से मेरे पांव की धूरि का घात करके उसका मेरे पाँव से नाश करके, जल के सहित उसे फेंक दो और मुझे जल्दी पार उतारो। 'पा पाने' (भ्वा० प०अ०) "पा रक्षणे" (भ्वा०प०अ०) और 'पै शोषणे' (भ्वा०प०अ०) इन तीनों धातुओं से निष्पन्न पानीय (भाषा में पानी) शब्द का अर्थ होता है कि पिया हुआ पानी रक्षा भी करता है और तृषा का शोषण भी करता है—

यतः प्राणभृतां प्राणाः सम्भवन्ति विशाम्पते।
तस्मात्पानीयदानाद्वै न परं विद्यते क्वचित्॥
[वाचस्पत्योद्धृतमहाभारतम्]

पानीयं प्राणिनां प्राणस्तदायत्तं हि जीवनम्। [राजबल्लभः]

पानीयं प्राणिनां प्राणाः पानीयं पावनं महत्।
पानीयस्य प्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती॥ [हेमाद्रि-दानखंड]

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरैं, मोती मानुष चून॥ [रहिमन बिलास]

धन्यं यशस्यमायुष्यं जलदानमिहोच्यते। [वाचस्पत्यम्]

श्रीगोस्वामीजीने भी 'पा रक्षणे' धातु से निष्पन्न पानी शब्द के भाव से ही— राम सुप्रेमहिं पोषत पानी।

और 'पै शोषणे;' धातु से निष्पन्न पानीय शब्द के भाव से ही-

हरत सकल कलिकलुष गलानी

लिखा है। शायद निषादराज गुह का भाव रहा हो कि गंगाजी तो समस्त दोष-दुख को शोषण कर ही लेती हैं, इससे प्रच्छालन करूं तो हो सकता है कि ये श्रीरामजी के पथ श्रम को सदैव के लिये शोषण करलें। इससे—पानि कठौता भरि लै आवा

छोटो सो कठौतो भरि आनि पानी गंगा जू को ॥

और पद पखारने के बाद उस प्रच्छालित चरणामृत से अपने एवं अपने पितरों के समस्त दुःख दोषों को अपवारित कर दूर फेंक कर सबको भवपार करने के भाव से—

"पद पखारि जलपान करि आप सहित परिवार। पितर पार करि०"

गुह के लाये पानी और शबरी के लाये जल का एक अर्थ-दिव्य गुणशील पानी शब्द को तुच्छ कहने वालों की तुच्छता ही द्योतित होती है, कि उन्होंने कभी संस्कृत भाषा से जान पहिचान नहीं किया और कभी किसी संस्कृतज्ञ रामायणी से रामचरित मानस का श्रवण अध्ययन करके मनन नहीं किया। भगवान् श्रीसीता-रामजी उन्हें सुबुद्धि दें।

शंका ३६

श्रीगोस्वामीजीने भक्तिमती शबरी के जूठे बेरों की चर्चा नहीं किया क्यों? (जगत नारायणलाल ऐडवोकेट सुलतानपुर)

समाधान

श्री शबरी बात्सल्यरस पूरित तन मन कीन्ह।
लछिमन रामकुमार कहँ पनस रसाल सु दीन्ह॥

शवरी जी के यहां श्रीरामजी ग्रीष्मऋतु में गये थे शबरी के यहाँ जाने के एक सप्ताह के भीतर ही ऋष्यमूक की गुफा में रहने लगे थे। गुफा में जाने के पहले सुग्रीव से कहा था कि-

गत ग्रीष्म वरषा रितु आई। रहिहौं निकट शैल पर छाई॥

और गुफा निवास के कुछ दिन बाद वर्षा रितु आई है। इसका वर्णन बाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा कांडके २७ वें सर्ग में २४ श्लोकों में है ४८ श्लोकों में २७ वाँ सर्ग समाप्त है। कुछ काल बाद जब वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। उसका वर्णन २८ वे सर्ग के दूसरे श्लोक–

अय स काल: सम्प्राप्त: समयो जलदागम: ॥

से है। ग्रीष्मान्त में शबरी बन में मिलने वाले फलों का वर्णन–

जम्बूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिन्दुकाः ।
अश्वत्था कर्णिकाराश्च भूताश्चान्ये च पादपा: ३७।३॥
तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान् बलात् ।
फलान्यमृत कल्पानि भक्षयित्वा गमिष्यथ: ॥ ३७।५॥

इसमें कहीं वेर (बदर) का संकेत भी नहीं है। ग्रीष्मान्त में कहीं बेर फलता भी नही है। जंगली बेर (झरबेरिया) और कर्कन्धु (कठबेरिआ) अषाढ़ वर्षारम्भ में जमता पनपता है भाद्र· पद में फूलता है और कार्तिक तक पक कर समाप्त हो जाता है। परन्तु राजबेर=पेवँदी, कलमी बेर हिम ऋतु में फूलता फलता है होली तक झर कर समाप्त हो जाता है। अतः जब श्रीरामजी शबरी के यहां गये उस समय किसी प्रकार का भी बेर नहीं रहता है। उस समय तो शबरी जी ने--

"कन्द मूल फल सुरस अति दिये राम कहँ आनि ॥
फलानि विविधान्येव ऋतुकालोद्भवानि च ।

एक प्रसिद्ध रामायणी ने कहा—

सब तरु परे राम हित लागी ।

मैने कहा– हित और लागी का क्या अर्थ है। यदि हित-हित या लागी-लागी होता तो एक होता अभ्यास और एक होता

आम्रेडित । परन्तु वैसा न होने से हित माने मित्र, लागी माने लिये, अर्थात् लंका के सब वृक्ष ऋतु और कुरितु का विचार न करके श्रीरामजी के हित मित्र बानर भालुओं के लिये फल गये, और यह इस कारण हुआ कि—

बिनहीं रितु तरुवर फरैं शिला द्रवैं जल जोर।
राम लखन सिय करि कृपा जब चितवें जिहि ओर॥

यह राम जी के अपने लिये नहीं था, अपने लिये तो—

भूमि शयन बलकल वसन, अशन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय-समय अनुकूल॥

जिस प्रदेश में कुरितु में फल फूल हो जाता है वह भय का दाता है-
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

किसी हिन्दी के कवि ने सम्भवत; मध्व गौड़ीय सन्त श्री प्रियादास जी ने पहिली बार भक्तमाल की टीका में बेर की कल्पना किया है, प्रियादास जी ने और भी कई जगह अनर्थ किया है। जैसे दामा शेट शिंपी (दरजी) के पुत्र भक्त प्रवर नामदेवजी का जन्म शाके ११९२ में कार्तिक शुक्ला एकादशी को हुआ था और शाके १२१४ में नामदेवजी के पिता दामाशेट का देहाँत हुआ था। उन नामदेव जी को विधवा से जन्म लेना प्रियादासजी ने लिख दिया। ऐसे हो और कई जगह अनर्थ किया है।

बेर की तरह ही एक और भी अनर्थ वक्ता लोग मंच पर किया करते हैं कि जूठा होने के कारण लक्ष्मण जी ने बेरों को खाया नहीं फेंक दिया वही संजीवनी बनी आदि।

गो०जीने 'कन्द- मूल फल सुरस अति०॥ लिखा है, बेर नहीं और लक्ष्मण जी को शबरी का दिया हुआ कन्द मूल फल आदि खाना बार-बार लिखा है। देखिये गीतावली ३।१७

"फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना दये"
"किहि रुचि किहि छुधा सनुज मागि-मागि प्रभु खात।"
"बालक सुमित्रा कौशिला के पाहुने फल साग के।"

बाल्मीकि जी लिखते हैं कि चिरजीवनी शवरी—

"धर्मे स्थिता" "सिद्धासिद्ध सम्मता" 'शबरी' धर्मचारिणीम्"
"श्रमणां धर्मनिपुणाम्" आदि और श्रीरामजी ने भी कहा है कि—

"सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे।"

पं० श्री विजया नन्द जी त्रिपाठी कहा करते थे कि नवधा किसी प्रकार की भक्ति में जूठा खिलाने = भोग लगाने का विधान नही है। अतः

शवरी ने बेर नही दिया था, शवरी ने जूठा फल नहीं दिया था शवरी के दिये फलों को लक्ष्मण जी नें भी मांग-मांग कर खाया था।

शंका—३७

काशी के रामायणी लोग प्रचार करते हैं कि गोस्वामीजीने रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ से लेकर अरण्यकाण्ड के अन्त तक अयोध्या में किया था और किष्किन्धा काण्ड से उत्तर कांड अन्त तक की रचना काशी में किया था। इसमें कहां तक तथ्य है जबकि गो० जी स्वयं लिखते हैं कि—

अवधपुरी यह चरित प्रकाशा॥

रामबल्लभा शरण "पथिक" मानस संघ, रामबन

समाधान

परं ब्रह्म धरि चारि रूप खेले बनि भाई।
आदि शक्ति श्रीसीय जहां दुलहिनि बनिआई॥
जहँ मणि पर्बत धर्म ज्ञान भक्ती की खानी।
पाप ताप सन्ताप हरति सरजू महरानी॥

मनु वाल्मीकि तुलसी प्रथिति प्रथम काव्य सरि जहां ब्रहि
अब मानस पीयूष बह जे कुमार श्री अवध महि ॥

सन् १९५१ ई० की बात है, एक दिन मैं कशी में एक बहुत विख्यात रामायणी के घर बैठा था किसी बात पर उन्होंने भी यही कहा और प्रमाण दिया कि–

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि सो काशी सेइय कस न ॥

यह सोरठा काशी में बैठकर लिखा गया। मैंने पूँछा विनयपत्रिका की रचना कहाँ हुई थी ? उन्होंने कहा काशी में--

सेइय सहित सनेहदेह भरि कामधेनुकलि काशी ॥

मैंने कहा विनयपत्रिका में इसके आगे है--

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।

और चित्रकूट पहुँचने पर कहा "सब शोच बिमोचन चित्रकूट ॥" इससे तो निश्चय हुआ कि विनयपत्रिका की रचना चित्रकूट में हुई। उन्होंने कहा यहां गोपाल मन्दिर में रचे जाने की ख्याति है। मैंने कहा इसे तो मैं भी जानता मानता हूँ परन्तु मेरी तर्क का क्या उत्तर है ? इस पर वे चुप रहे। मैंने कहा-सोरठा में काशी के लिये 'सो' कहा है। यह निश्चयार्थक सर्वनाम विप्रकृष्ट अर्थात् दूरवर्ती के लिये प्रयुक्त परोक्ष सूचक है। और अयोध्या के लिये प्रारम्भ में-तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं। आवहिं के साहचर्यसे 'तहां'का तात्पर्य 'इहां' सेहै।और अन्तमें दिन प्रति सकल अयोध्या आवहि ॥" दोनों जगह "आवहिं", प्रत्यक्ष सम्बन्ध सूचक होने से समीपबाची है। अतः यह सोरठा काशी से दूर अयोध्या में रचा गया और रामचरित मानस के वर्णानाम् से लेकर "मानवाः" तक की रचना अयोध्या में ही हुई है।

शंका ३८

विप्र रूप धर कपि तहँ गयऊ। माथ नाय पूंछत अस भयऊ॥
बिप्र बनकर फिर क्षत्रिय को प्रणाम क्यों किया ?

लक्ष्मीधर पाठक

समाधान

मतवारे त्रिवदें सदा मतवारे होइ नित्य।
तजि कुवाद हरि भजै हरि पद लहै सुनित्य॥

(क) वेद के विद्यार्थी की विप्र संज्ञा है स्मृतियों में विप्र शब्द से बताई गई है--

वेद पाठी भवेद्विप्रः ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः। अत्रिसंहिता और ब्रह्म अर्थात् वेद-विज्ञाता की ब्राह्मण संज्ञा है। (यदि सम्पूर्ण नहीं तो अपनी शाखा का पूर्ण अध्ययन करने वाला ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है)। विप्र शब्द की तरह बटु शब्द का अर्थ भी विद्यार्थी ही है। मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। अतः बटु विद्यार्थी-विप्र ये तीनों शब्द पर्यायवाची हैं। महावीर चरितम् में लिखा है कि परशुरामजी ने जमदग्नि के पितृव्य बन्धु (चचेरे भाई) वयोवृद्ध शतानन्द का अपमान करने के लिये कहा था--

पश्य बटोः क्षत्रियावष्टब्धस्यगर्जितानि॥

और वहीं जनक ने जब परशुराम को परुषवादी द्विज कह कर पुनः कटु रटने वाला बटु कहा--

अस्मानधिक्षिपतु नाम न किंचिदेतत्,
कस्य द्विजे परुषवादिनि चित्तभेदः।
वत्सस्य मंगलविरुद्धमयं तु प्रायः,
कर्णेरटन्कटु कथं न बटुर्विसह्यः॥

(महावीर चरितम् नाटकम् ३।३१)

यह सुनते ही क्रोध से जल भुनकर परशुराम ने कहा कि--

आः ! क्षत्रियापसद ! मामेवं बटुरित्याक्षिपसि ।'

क्या मैं अभी तक विद्यार्थी ही हूँ जो बटु कहकर मेरा अपमान करता है ।

इससे भी यही निश्चय हुआ कि गृहस्थ आदि तीनों आश्रमों से ब्रह्मचर्याश्रम (विद्यार्थी जीवन) आश्रम-दृष्टि से न्यूनकोटि का है।

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि एकबार प्राचीन शल्व, सत्ययज्ञ, जन, इन्द्रद्युम्न और बुडिल नाम के पाँच परम-वेदज्ञ महर्षि एक साथ ही वैश्वानर विद्या की प्राप्ति के लिये क्षत्रिय कुलोत्पन्न केकय नरेश अश्वपति के पास गये । राजा अश्व-पति ने उन पांचों महर्षियों को प्रणाम करके सेवा के लिये आज्ञा चाहा, पर जब मालूम हुआ कि अभी ये लोग वैश्वानर विद्या के विद्यार्थी हैं तो विद्यार्थी भाव से प्राप्त न होने के कारण उन लोगों को दूसरे दिन आने के लिये कहा और दूसरे दिन जब वे महर्षिगण शिष्यभाव से समित्पाणि होकर राजा के पास गये तब उन्हें वैश्वानर विद्या पढ़ाई गई ।

आज भी ब्राह्मण कुमार विद्यार्थी क्षत्रियादि अध्यापकों को पादस्पर्श पूर्वक प्रणाम करते हैं, साष्टांग पड़ते भी देखे जाते हैं । अस्तु--

सुग्रीव ने हनुमानजी को आज्ञा दिया था कि--

धरि बटु रूप देखु तैं जाई ।

तब कपीश की आज्ञानुसार ही--

विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ ।

इसीसे श्रीराम दोनों भाइयों ने विप्र देख कर भी स्वयं आश्रम में श्रेष्ठ होने से बटु-छात्र को प्रणाम नहीं किया और स्वयं क्षत्रिय

होने से विप्र विद्यार्थी के प्रणाम करने पर आशीर्वाद आदि नहीं दिया। अतः विप्र-बटु-छात्र वेषधारी हनुमानजी का प्रणाम करना सर्वथा उचित ही हुआ, इसमें अनौचित्याभास तक नहीं है। (ख) श्रीरामजी के पास क्षत्रियत्व के द्योतक शस्त्रास्त्र ही थे, परन्तु वल्कलवस्त्र, अजिन, जटा आदि तो मुनियों का ही था, और उस समय श्रीरामजी जिस रूप में थे उस वेषभूषा में अनेक बनवासी मुनि ब्रह्मर्षि भी रहा करते थे; जैसे-परशुराम और द्रोणाचार्य, भारद्वाज--

कटि मुनि बसन तूण दुइ बाँधे। धनुशर कर कुठार कल काँधे॥
मुखाग्रे यस्य वै वेदाः कराग्रे वै धनुश्शराः।
उभयोर्द्रोण सामर्थ्यं शापादपि शरादपि॥ (महाभारत)

गौतम गोत्रीय कुरुवंश पुरोहित ब्रह्मर्षि कृपाचार्यजी और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी इसी वेष में रहते थे। अतएव ऐसी दशा में ब्राह्मण क्षत्रियादि के निर्णीत विषय में अनिश्चित होने के कारण प्रणाम करना अनुचित नहीं माना जा सकता।

(ग) अनेक धर्मशास्त्रकारों का शासन है कि किसी अपरिचित व्यक्ति का अनावश्यक परिचय आदि न पूँछना चाहिये। यदि परिचय प्राप्त करना ही आवश्यक हो तो उसे नमस्कार करके परिचय प्राप्त करे, परन्तु वहां गोत्रोच्चारण पूर्वक नमस्कार का बन्धन नहीं है। हनुमान्‌जी और श्रीरामजी परस्पर अपरिचित हैं, इसलिये विप्ररूपधारी श्रीहनुमान्‌जी ने उस समय नमस्कार करके पूँछा।

शंका ३९

नाथ शैल पर कपिपति रहई।

उस समय तो कपिपति महाबली बालि था; तब हनूमान जी ने सुग्रीव को कपिपति क्यों कहा? (लक्ष्मीधर पाठक)

समाधान

नीति निपुण मारुत तनय, नय प्रतिपालक राम।
राम पवन नन्दन चरण, करत कुमार प्रणाम ॥

इस सम्बन्ध में इस ग्रन्थ के दूसरे भाग के पृष्ठ एकसौ बहत्तर पर विशेष प्रकाश डाला गया है यहां केवल इतना ही कहना है कि सेना सेनापति के आधीन रहती है राजा के नहीं परन्तु सेनापति राजा के आधीन रहता है। खास-खास पांच मंत्रियों में सेनापति भी एक (सुरक्षा) मन्त्री होता है।

मंत्रिन पुर देखा बिनु साईं। दीन्हिनि राज मोहि बरिआईं ॥

" सुग्रीव राज नहीं ले रहे थे मंत्रियों ने बरिआई = जबरदस्ती राजा बनाया। बालि ने मंत्रियों की बैठक करके उनसे नहीं पूंछा कि मेरी अनुपस्थिति में सुग्रीव को राजा क्यों बनाया, आतेही सुग्रीव को मारकर भगा दिया; तो मत्रीगण सुग्रीव के साथ ही भगे।

तुलसी राम सुदीठि ते निबल होत बलवान।
बालि बैर सुग्रीव को कहा कियो हनुमान ॥ दोहावली ११०

मंत्रियों ने सोचा कि हम लोगों ने सुग्रीव को राजा बनाया अतः हमारे कारण सुग्रीव निकाला गया इसी कारण मंत्रीगण सुग्रीव के साथ-साथ मारे मारे फिरे—

मंत्रिन सहित इहां इक बारा। बैठि रहेउँ.... ।

मंत्रिमण्डल सुग्रीव को राजा मानता है। इसीसे

नाथ शैल पर कपि पति रहई।

कहा और सुरक्षा मंत्री सेनापति सुग्रीवके साथ है, इसी सेकहा कि-
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥

शंका ४०

नाथ शैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तुव अहई ॥

दास की जगह दशा होना चाहिये क्योंकि आगे चौपाई में है कि-

तासन नाथ मयत्री कीजै ।

और प्रेम बैर कुश्ती बराबरी वालों से होती है सो दास अर्थात् मालिक और दास की मित्रताई नहीं होती ।

(शालग्राम अग्निहोत्री)

समाधान

नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्द्धमपि राघव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥

(क) बानर राज श्रीसुग्रीव जी तो सदैव से श्रीरामजी को स्वामी और स्वयं को दास मानते रहे; परन्तु जब श्रीरामजीने विप्ररूपी हनूमानजी से अपना सब चरित्र कहा; उसमें शबरीजी से मिलना और शवरी जी के कहने से पंपासर आना भी कहा ही; उसमें यह बात तो थी ही कि—

पंपा सरहि जाहु रघुराई । तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥

जब श्री पवन नन्दन ने सुना कि सुग्रीवजी से मैत्री करने आये हैं तो कहने लगे कि—

नाथ शैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥

परन्तु श्रीमान् तो मिताई करने आये हैं। अतएव अब चलकर-

तासन नाथ मयत्री कीजै । दीन जानि तिहि अभय करीजै ॥

(ख) संसार में जितनी भी बातें हैं उन सब में साधारण असाधारण दो भेद हुआ करते हैं। मैत्री में भी दो भेद हैं। मैत्री की साधारण नीति तो यह है कि—

प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति अस आहि ।

परन्तु मैत्री के सम्बन्ध में असाधारण (विशेष) नीति तो यही है कि—

के लघु के बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस। मिले महा विष होइ॥ (दोहावली३२३)
नीति के स्थान पर श्रीरामजी सदैव नीति ही वर्तते हैं। क्योंकि—
नीति प्रीति स्वारथ परमारथ। कोउ न राम सन जान यथारथ॥

यदि हनुमान् जी "सुग्रीव दशा तव अहई" कहते तो मैत्री की प्रधान नीति—

कै लघु कै बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ।

के विरुद्ध होता और नीति के विरुद्ध तो श्रीरामजी चल सकते ही नहीं तथा श्रीहनुमान जी नीति के प्रतिकूल कभी कुछ कहभी नहीं सकते। नीति विरुद्ध बात होने पर तो संभवतः सुग्रीव से श्रीरामजी मिलते भी नहीं: इससे 'बुद्धिमतांवरिष्ठः' ज्ञानिनामग्रगण्यः श्रीहनूमान जी ने कहा कि—

सो सुग्रीव दास तव अहई॥

आगे के समाधान में आप पढ़ेंगे कि बालि सुग्रीवादि बनार्य, अनार्य सभी अयोध्याके आधीन मांडलिक राजा थे। इससे दास कहा।

शंका ४१

जब जटायु ने श्रीरामजी को बतला दिया था कि—
नाथ दशानन यह गति कीन्ही। तिहिखल जनक सुता हरि लीन्ही॥
लैदक्षिण दिशि गयउ गुसाईं।

तब फिर श्रीरामजीने श्रीहनुमान जी और सुग्रीव जी से—
इहां हरी निशिचर वैदेही। खोजत विप्र फिरै हमतेही॥
मात्रकहा, रावणका नाम क्यों नहीं बतलाया? (वृजराजलाल श्रीवास्तव)

समाधान

हे हनुमान महाबलवान कृपा के निधान सुजान प्रभो।
ममकाज कहा अति भारी तुम्है जब लीन्ह उठाइ पषान प्रभो॥
तुम जानत हौ सबके जियकी तिहिते नहिं कीन्ह बखान प्रभो।
हियकी अभिलाष सु पूरि करो निज दास कुमारहिं जान प्रभो॥

श्रीरामजी को तो यह मालूम ही हो गया था कि श्रीजानकी जी को रावण उठा ले गया है; पर ले जाकर कहां रखा है? लंका में या लंका से बाहर अन्यत्र कहीं? अथवा जीवित रखा है या मार डाला है क्योंकि—

'निशिचर निकर नारि नर चोरा।' नर अहार रजनीचर करहीं॥

इसका ठीक पता नहीं है इसीसे कहते हैं कि--

कतहुं रहइ जौ जीवति होई।

अतः यदि सुग्रीवादि से सीधे रावण का नाम बतला देते तो सम्भवतः बन्दर लोग पहिले रावण से ही भिड़ जाते (जैसाकि प्रायः अवेश में होता है। तब श्रीसीताजीको ढूंढते नहीं और ऐसी दशा में कार्य हानि की संभावना हो सकती थी। इसीसे सुग्रीव या हनुमदादिकों से दशानन का नाम नहीं बतलाया कि पहले यह तो ज्ञात हो जाय कि सीताजी कहां हैं? चोरी की वस्तु को चोर यदि किसी स्थान पर रख दिये-छिपा दिये हो और कोई आवेश में आकर चोर को मार डाले तो प्रायः वह वस्तु अज्ञात अतएव अप्राप्त ही रह जाती है। इसीसे प्रथम चोरी गई वस्तुका पता लगाकर तब चोर को दण्ड देने का नियम सा बन गया है। केवल किसी के कह देने मात्र से कि अमुक व्यक्ति अपराधी है उसे दण्ड देना या अपराधी करार दे देना नीति नहीं है, और

"नर अहार रजनीचर करहीं।" निशिचर निकर नारि नर चोरा॥'

मनुष्यों को खा डालना या चुरा लेना (प्रधानतः नारियों का चुराना) निशिचरों का काम है। आश्रम में या आस पास कहीं रात दिन न देख पड़ने के कारण श्रीजानकी जी के हरण का ही अनुमान पुष्ट होने से और—

तिहि खल जनकसुता हरि लीन्ही।

यह समाचार सुनकर ही कहा कि—

इहां हरी निशिचर वैदेही।

शंका ४२

श्रीरामजी ने अपना परिचय देते समय हनुमानजी से--

कोसलेश दशरथ के जाये। (हम०)

किसी पुरुष का जाया वह होता है जो उसके रेतः सिंचन द्वारा पैदा है औरस को ही किसी का आत्मज कहा जाता है क्षेत्रज को नहीं। जैसे हनुमान जी को कभी केशर्यात्मज नहीं कहा जाता है क्योंकि वे केशरी के क्षेत्रज पुत्र हैं औरस नहीं, हां पवन के औरस पुत्र होने से पवनात्मज-वातजात आदि कहे जाते हैं। श्रीरामादि-चारो भाई यज्ञाग्निप्रदत्तचरु से हुये हैं तो दशरथ के जाये कैसे। क्या रामजीके कहने का अन्य अर्थ है ? (पं० सम्पत्ति मिश्र मैथिल)

समाधान

श्री अवधेश दिनेश कुमार सुरेश मिताइ चहैं जिनकी।
दक्षिण कोसलराजसुता बड़ि कान्तिमती पतिनी जिनकी॥
अश्वपती नृप कैकय की दुहिता द्वितीया पतिनी जिनकी।
श्रीमगधेश सुमित्र सुतांहि नमौ तृतीया पतिनी जिनकी॥

पुत्रेष्टि यज्ञान्त में बड़ी रानी कान्तिमती कौसल्या को आधा, मझली रानी रूपमालिनी कैकेयी को चतुर्थांश और छोटी रानी गुणावती मागधी सुमित्रा को चतुर्थांश का दो भाग करके अग्नि प्रदत्त चरु दिया गया। महर्षि श्रीवशिष्ठजी जानते और मानते हैं कि अपने औरस पुत्र में जो नैसर्गिक प्रेम होता है वह प्रेम अन्य किसी तरह से उत्पन्न क्षेत्रज, दत्तक, एव पोष्य पुत्रों में नहीं हो होता है। अतः बशिष्ठ की आज्ञा से राजा ने क्रमशः रेतः सिंचन किया था। भला क्या आपने कभी बिचार

किया है कि दशरथ की तीन ही पत्नियां थीं और उन तीनों नारियों ने एक दिन ही चरु भक्षण किया तो पुत्र प्राकट्य में एक एक दिन का अन्तराल क्यों हुआ ? । इसका कारण वही रेतः सिंचन की क्रिया है; अतः बड़ी रानी के रेतः सिंचन के पर-दिन मझली रानी में और उसके परदिन छोटी रानी में, रेतः सिंचन किया था; उसी क्रम से एक एक दिन के अन्तराल से तीनों को पुत्र लाभ हुआ । इसीसे चारों कुमार दशरथात्मज-दशरथ के जाये हैं । दशरथ की तीन ही नारियाँ-पत्नियाँ थीं ।

"यहि बिधि गर्भ सहित सब नारी ।"
"मन्दिर महँ सब राजहिं रानी ॥"

इस पर बहुत विस्तार से "मानस में तीन" नामक निबन्ध में मैंने उहा-पोह किया है ।

शंका-४३

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । पहिचाने कैसे ? जबकि श्रीरामजी ने प्रभुता की कोई बात नहीं कही थी ?

(ठा० कु० शे० सिंह)

समाधान

जासु बचन पर खल बधे जिहि हित रोये नाथ ।
सिन्धु बँधाये जासु हित तिहि सिय पद मम माथ ॥

श्रीरामजी ने हनुमानजी से अपनी चार विपत्ति गाया था ।

राज्यनाशो बने बासः हृता सीता मृतः खगः ।
एकैकमपि यद्दुःखं समुद्रमपि शोषयत् ॥ (मा० ना० ४४३)
१-कोसलेश दशरथ के जाये । से राज्य नाशः ।
२-हम पितु बचन मानि बन आये । से बने बासः ।
३-४-इहां हरी निशिचर बैदेही । से हृतासीता मृतः खगः ।

इन चारों दुःखों में एक एक में समुद्र को सुखा देने की ज्वाला है। ऐसे दुःखों में जीव रोता है-गाता नहीं, और वे गाते हैं--
आपन चरित कहा हम गाई। जन सब कबहूं कि करौ दुराऊ।
इसलिए हनुमानजी से अपना ईश्बरत्व जाकर बता दिया।
अतः ये जीव नहीं, अपितु प्रभु हैं।

शंका–४४

बानरों का राजा तो बालि था। तब सुग्रीव कैसे "जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।" अनन्त वानर भेजता ?

(ठा० कु० शे० सिंह)

समाधान

मंत्रि मित्र सेनापती मानत जिनहिं कपीश।
सो नल नील सुबन्धु नित धरत राम पद शीश॥

राजा के मंत्रिमंडल में सेनापति भी रहता है, इसीसे उसे सुरक्षा मन्त्री कहते हैं। सेनापति राजा के आधीन रह कर राजा की आज्ञा का पालन करता है, परन्तु सेना तो सेनापति की ही आज्ञा मानती है, राजा की नहीं। समस्त बानरों के सेनापति नल नील सुग्रीव के साथ हैं इससे सुग्रीव के लिये पठाइहि कहा। इस पुस्तक के द्वितीय भाग की शंका ४० और ५० का समाधान भी पढ़िये।

शंका–४५

बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहिं जिय भेद बढ़ावा॥
क्या भेद बढ़ाया ? (ठा० कुल शेखर सिंह)

समाधान

गृहिणी गृह ताते कबहुं लछिमन करत न चित्त।
लखि सुकंठ गृह बालि जिय भेदित ताहि निमित्त॥

गेह और गृह दोनों शब्द एकार्थक हैं और दोनों के अर्थ रहने के स्थान और पत्नी होते हैं।—

गृहं गेहश्च पुं भूम्नि कलत्रेऽपि च सद्मनि। (मेदिनी)
गेहमस्त्री शालागमे स्त्रियाम्। (वाचस्पत्यम्)
गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम्। (अमर)

जिसकी पत्नी न हो तो वह अपने आपको गृहस्थ कहकर स्वयं को तथा दूसरों को धोखा देता है। आजकल विरक्त कहाने वाले भी बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं। अस्तु राजतंत्र काल में अनार्य-बनार्य जातियों आजकल की भाषा में आदिबासियों में नियम था। और कहीं-कहीं आरण्यकीयों में आज भी नियम है कि जाति प्रधान (मेंठ) चौधरी, राजा, मुखिया आदि से अभिहित व्यक्ति के मरने पर उसका बेटा जाति प्रधान होता था, बेटा न होने पर उसका भाई आदि जाति प्रधान बनाया जाता था और यदि युवावस्था में अपुत्रक ही जाति प्रधान मर जाता तो उसका भाई आदि जो भी जाति प्रधान वनाया जाता उसे बाध्य होकर उस प्रथम जाति प्रधान की पत्नी से पुत्र उत्पन्न करके उसे ही उस प्रधान के क्षेत्रज पुत्र को ही जाति प्रधान (राजा) बनाया जाता था।

बालि केवल बनार्य-बानर भालुओं आदि का जाति प्रधान (राजा) था। भूतल पर बनार्यों की संख्या बहुत थी इसलिये उनका संगठन बनाये रखने के लिये राज तन्त्र के समान मंत्री सेनापति सैन्य आदि की व्यवस्था थी बालि नदी बन पर्वत भूमि और भूमि के अन्य निवासियों का राजा नहीं था उन सबके राजा ऐक्ष्वाकु थे। श्रीरामजीने बालि से ही ऐसा कहा था। देखिये वाल्मीकीय रामायण (४।१८।४-१२)

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलबनकानना ।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ६ ॥

मायावी के युद्ध में जब सुग्रीव ने बालि को अनजानते में गुफा में बन्द कर दिया था और सुग्रीव को मन्त्रियों ने बलात् राजा बनाया था (बालि को मारा गया समझ कर) उस समय अपुत्रा होने से - बालि की विधवा पत्नी को सुग्रीव ने पत्नी बनाया था, मंत्रि मण्डल की आज्ञा से। वनार्य जातियों के नियम से। इसी को लक्ष्य करके अंगद ने कहा था कि जेठे भाई के जीवित रहते ही उसकी प्रिया महिषी को जिसने अपनी भार्या बना लिया था—

भ्रातृज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम् ।
धर्मेण मातरं यस्तु, स्वीकरोति जुगुप्सितः ॥

(वा० रा० कि० ५५।३)

इसी बात को लेकर अभिषेक नाटक में भास ने लिखा है कि बाली ने श्रीरामजी से प्रश्न किया था कि भातृ पत्नी को पत्नी बनाने वाले दोनों हैं। रामजी ने कहा कि जेठे भाई को छोटे भाई की पत्नी को ग्रहण नहीं करना चाहिये। तुमने छोटे भाई की पत्नी को ग्रहण कर लिया--

बाली–सुग्रीवेणाभिमृष्टाभूद् धर्मपत्नी गुरोर्मम ।
तस्य दाराभिमर्शेन कथं दण्ड्योऽस्मि राघव ॥ (१।२१)
भ्रातृ दाराभिमर्शनेन तुल्यदोषयोरहमेव दण्डितो न सुग्रीवः ? ॥
रामः—दण्डिस्त्वं हि दण्ड्यत्वाद्, अदण्ड्यो नैव दण्ड्यते ॥
न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य, यवीयसो दाराभिमर्शनम् ॥
बाली-- हन्त अनुत्तरा वयम् ।

ऐसा ही हरिवंश में भी है। देखिये—

सुग्रीवस्य कृते येन बानरेन्द्रो महाबलाः ।
वाली विनिहिता युद्ध, सुग्रोवश्चाभिषचितः ॥ (हरिवं१।४१।३३)

बाली ताहि मारि गृह आवा कहा पुर, आवा नहीं कहा अर्थात् गृह अर्थात् पत्नी और पत्नी के वेश्म (रनिवास) में आया। तो वहाँ मुझ (सुग्रीव) को स्वपत्नी शाला में देखकर जी में यही भेद बढ़ाया कि मेरी पत्नी को हथियाने के लिये ही इसने मुझे गुफा में शिला से बन्द करके मार डालना चाहा। इसी भेद बुद्धि के आजाने से बालि ने--

रिपु समान मोहि मारिसि भारी। हरिलीन्हिसि सबंस अरु नारी॥

भेद बढ़ाने पर भी बालि को उचित था कि सुग्रीव से पूंछता और मन्त्रियों को बुलाकर पूँछता। सो न करके सुग्रीव को ही मार भगाया। इसीसे मन्त्रिमण्डल भी (बालिमहाबल अतिरनधीरा) बालि से कमजोर होने से सुग्रीव के साथ भगें क्योंकि मन्त्रियोंने ही सुग्रीव को जाति प्रधान (राजा) बनाया था।

तुलसी राम सुदीठि ते निबल होत बलवान।
बालि बैर सुग्रीव को कहा कियो हनुमान ॥ (दोहावली ११०)

लक्ष्मण जीके लिये भी कहा गया है कि--

करत लखन सपनहुँ न चित बंधु मातु पित गेह ॥

बन्धु मातु पितु के साहचर्य से गेह का अर्थ पत्नी ही है, भवन घर नही।

शंका–४६

एक रूप तुम भ्राता दोऊ। तिहि भ्रम ते मारेउँ नहि सोऊ ॥
जब श्रीरामजी साक्षात् परब्रह्म परमात्मा थे, तब आदि पुरुष को भ्रम क्यों हुआ? (पं० रामरक्षित शुक्ल)

समाधान

एक तत्त्व सियराम नारि पुरुष में दास हित ।
मन बच कर्म प्रणाम तिन पद करत कुमार नित ॥

बालि के कारण सुग्रीव सदैव दुखी रहा करते थे—
बालित्रास व्याकुल दिन राती । चिन्ता बहु विवरन जर छाती ।
और जब श्रीरामजी ने प्रतिज्ञा किया कि—

"सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान ।"
"सखा सोच त्यागहु बल मोरे ॥"

इस पर स्पष्ट ही सुग्रीव को विश्वास नहीं हुआ कि ये बालि को मार सकेंगे; इससे साफ कह दिया कि—

बालि महाबल अति रणधीरा ।

अतः श्रीराम को केवल परीक्षार्थ 'दुंदुभि की अस्थि और चक्राकार सप्ततालों की परिधि दिखलाया । उसे जब-

बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये ।

तब श्रीरामजी का अमित बल प्रत्यक्ष देखकर ही सुग्रीव के मन में क्षणिक ज्ञान उत्पन्न हो गया और--

बालि बधब इन भइ परतीती ।

उस क्षणिक ज्ञान के उत्पन्न होते ही सुग्रीव ने श्रीरामजी की प्रतिज्ञा के मिथ्या होने का कुछ भी विचार न करके कहा कि मेरा तो 'वालि' परम हित है । उसे मारिये मत) मैं तो अब चाहता हूं कि--

सब तजि भजन करौं दिन राती ।

यह ज्ञान वैराग्य क्षणिक ही था, यदि स्थाई होता तो सुग्रीवजी-

बन्धु न होय मोर यह काला ।

ऐसा न कहते इसी तरह बालि को भी क्षणिक ज्ञान का

दय हुआ था जिससे उसने 'समदर्शी रघुनाथ' कहकर तुरंत ही

तृण समान सुग्रीवहि जाती।

नों भाइयों की हार्दिक एकरूपता यही क्षणिक ज्ञान ही है। करूपता का भ्रम नर नाट्यका अभिव्यंजक होते हुये भी कारण र्भित है। भक्त जिसे अभी-अभी 'परमहित' कह चुका है, उसे गवान कैसे मार सकते हैं।

बन्धु न होइ मोर यह काला।

सा जब सुग्रीव ने कहा तब भगवान ने बालि को मारा। तनी भी समानता होने पर भी ध्यान देने पर पहिचान हो जाती है। क्या श्रीराम-भरत और श्रीलक्ष्मण शत्रुघ्न की रस्पर में अत्यन्त समता नहीं थी? अत्यन्त सादृश्य होने के ही ारण तो ऐसा था कि—

सहसा लखि न सकहिं नर नारी।

स पंक्ति का 'सहसा' शब्द ही बतला रहा है कि परस्पर दो एकरूपता होते हुये भी नर नारी गौर करने पर तो लख हचान) ही लेते थे। तबक्या श्रीरामजी इस विषय में साधारण नर-ारियाँ इतनी भी बुद्धि नहीं रखते थे कि शारीरिक ऐक्य का भ्रम बना ही रहता? अतः आन्तरिक अभिप्राय यह है कि-क्षणिक ज्ञान में तुम दोनों भाई बराबर हो-एकरूप हो, और तुम्हे भ्रम था कि मेरा (सुग्रीव का) बालि परम हित है--

बलि परमहित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम शमन विषादा।

इसीसे मैंने उसे नहीं मारा। अब जब तुम अपने को स्वीकार कर रहे हो कि मैं गलती पर था जो बालि को परमहितू मान रहा था सो यह हितू नहीं है अपितु यह तो--

बन्धु न होइ मोर यह काला।

तो अब बालि को अवश्य मारूँगा ।

शंका–४७

"सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान ।
ब्रह्म रुद्र शरनागत गये न उबरहि प्रान ॥"
"परा विकल महि शरके लागे । पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे ।
श्याम गात शिर जटा बनाये । अरुणनयन शर चाप चढ़ाये ॥"

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी सुग्रीव के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि बालि को मैं एक ही बाण से मारूँगा । यहाँ पर जब रामजी बालि को बाण मारते हैं और मारने के पश्चात् जब बालि श्रीरामजी को देखता है तो '.. शर चाप चढ़ाये ।' श्रीरामजी का बाण अमोघ है और वह चढ़ा हुआ बाण कहाँ कब और किसके ऊपर छोड़ा गया ? (पं० लोचनधरजी)

समाधान

पाप सिंह बड़ हृदय वन ग्रस्यो जीव वृषभेश ।
बधौं कृपा ब्रह्मास्त्र सो रघुवर अवध नरेश ॥

(क) कुछ लोग कह देते हैं कि श्रीरामजी ने अपनी सावधानी के लिये अर्थात् बालि का कोई सहायक यदि युद्धार्थ आ जाये तो उसके लिये ही धनुष पर बाण सज्जित कर लिया था । परन्तु मानस के अनुसार तो धनुष की ज्या (प्रत्यंचा–डोरी) के सज्जित मात्र कर देने को ही धनुष का चढ़ाना कहा जाता है, उस समय तो बाण धनुष से अलग ही रहता है और चढ़े हुये धनुष की ज्या पर चलाने (छोड़ने) के लिये रखना सधान करना कहा जाता है । देखिये––

चढ़ाना––"रहा चढ़ाउब तोरब भाई ।"
"लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े ।"

"कोदण्ड कठिन चढ़ाइ शिर जट जूट बांधत सोह क्यों।"
"धनुष चढाइ कहा तब जारि करौं पुर छार।"
धनुष पर बाण चढ़ाना---"सन्धान्यो प्रभु विशिष कराला।"
"अस कहि कठिन बाण संधाने। छूटे तीर..."
"खेंचि धनुष शत शर संधाने।" 'शर संधानि कीन्ह अति दापा'
"चाप चढ़ाइ बाण संधाना"।
अतः-- अरुण नयन शर चाप चढ़ाये।

का अर्थ है कि श्रीरामजी के नेत्र लाल हैं, बाण हाथ में है और धनुष चढ़ा है अर्थात् अभी कुछ ही क्षण पूर्व जो बालि को मारने के लिये धनुष चढ़ाया गया था वह अभी उतारा नहीं गया है-धनुष की प्रत्यंचा तनी हुई है और हाथ में सब समय बाण रखना तो श्रीरामजी का स्वभाव सा ही है। यथा--

"करकमलनि धनुसायक फेरत।"
"पाणौ बाणशरासनम् कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।"
"दुहुँ कर कमल सुधारत बाना।"
"पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानम्।"
"पाणौमहाशायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।"

श्रीरामजी के हरदम धनुषबाण धारण किये रहने का कारण श्री अग्रदेवाचार्यजी यह बतलाते हैं कि--

धनुषबाण धारे रहत सदा भक्त के काज।
अग्र सु एते जानिये राम गरीब निवाज॥ (अग्र ग्रंथावली)
धनुष बाण धारे लखत दीनहिं होत उछाह।
टेढ़े सूधे सबनि को है हरि हाथ निबाह॥ (दीनसूक्ति)

(ख) श्रीराम चरित मानस का पाठ करने वाले सज्जनगण जानते हैं कि श्रीरामजी के बाण अपना काम करके वापस चले

आते थे श्रीरामजी के पास ही। जैसा कि लंका काण्ड में वर्णित है। देखिये—

"अस कौतुक करि राम शर प्रविशे आइ निषंग।"

"मंदोदरि आगे भुज शीशा। धरिशर चले जहाँ जगदीशा॥"

तो इसी तरह जो बाण बालि के ऊपर चलाया गया था वही बाण बालि को मारकर पुनः श्रीरामजीके हाथ में चला आया था, वही बाण श्रीरामजी के हाथ में था और धनुष तो चढ़ा था ही। अतएव किसी तरह भी यहां बाण की मोघता और अमोघता का प्रश्न ही नहीं होता। ऐसा प्रश्न तो तब होता जबकि धनुष पर बाण का संधान किया गया होता, सो तो यहाँ है ही नहीं। धनुष चढ़ाने और बाण संधानने का भेद न समझ पड़ने तक ही शंका रहती है।

शंका ४८

श्रीरामजीने बालि को मारकर कहां तक उचित किया? इस पर अनेक प्रकार से वाग्विलास पूर्वक प्रकाश डाला जाता है। जो जितना अधिक तर्क-तीक्ष्ण, प्रवचन पटु होता है वह उतनी विदग्धता से समर्थन करता है। पर सार्वजनिक वैदिक शास्त्रीय (एक पक्षीय तर्क शास्त्र में नहीं) से क्या समाधान होगा।

(मानस मणि १४।८)

समाधान

सिद्ध महाकवि वस्तु पर मम अनुचित अधिकार।
क्षमिहैं बुधजन ढीठि सो जानि अबोध 'कुमार'॥

मुण्डकोपनिषत् २।२।८ की श्रुति कहती है कि-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

अर्थात् (सात्विक संस्कार बिशिष्ट जोवों को) ब्रह्म साक्षात्कार होते ही जो–

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परिगई।

जीवके अन्तः करण में ग्रन्थियां पड़गईं हैं वे अनायास ही विदीर्ण हो जाता है। जिस ग्रन्थि का परिणाम होता है कि "संशयात्मा विनश्यति" इस भगवद्वाक्य के अनुसार आत्माके सर्व संशयों का समूलोच्छेद हो जाता है और तब उसके संचित एवं प्रारब्ध द्विविध शुभा-शुभ कर्म स्वतः बिनष्ट हो जाते हैं, तब शुभाशुभ कर्म नष्ट होते ही वह जीव सर्वथा निर्दोष हो जाने से सर्वथा निर्मल हो जाता है। जबकि–

मम दरशन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥

ईश्वर बुद्धि से अर्थात्-ब्रह्म जानकर परमात्मा का दर्शन करने मात्र से जीव को सहजस्वरूपा गति प्राप्त हो जातीहै, और ऐसा होने पर––

जब जब होय धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविधि शरीरा। हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥

अधम अभिमानियों को मारने के लिये अवतार लेने वाले भगवान् ने जो—

मूढ़ तोहिं अतिशय अभिमाना। नारि सिखावन करिसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तिहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥
अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुन शठ ये कन्या, सम चारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

अगम्या-गमन एवं भगवदाश्रित बधेच्छुकता के कारण अधम और अभिमानी बालि को वध्य बतलाया अर्थात् उस अभिमानी बालि के भगवदाश्रित द्रोह रूपी अधमता का दण्ड उसका प्राणान्त

कर देना ही उचित बतलाया था।" वह नहीं हो सकता था और तब ऐसा न होने पर जो-

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम् । (स्मृतिसंग्रह)

इस शास्त्रीय अनुशासन पर भी भारी धक्का लगता। क्योंकि निर्मलान्तःकरण वाला व्यक्ति सर्वथा एवं सर्वदा दण्डानर्ह होता है, यह श्रौतस्मार्त सिद्धान्त तो है ही ऐहिक प्रथा भी ऐसी ही है। और 'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।' 'राम ब्रह्म परमारथ रूपा।'

इत्यादि मानस के ही अनेक स्थलों पर श्रीरामजी को पर-ब्रह्म बतलाया गया है, तो लड़ने के पूर्व श्रीरामजी बालि के संमुख वैसे ही जाते जैसे कि हृदय में निशाना ठीक करके तान करके शर प्रहार किया था' या पास ही चले जाते अर्थात् चाहे जैसे भी बाण लगने के पूर्व यदि बालि अच्छी तरह श्रीराम जी का प्रत्यक्ष दर्शन कर पाता तो वह सम्यक् दर्शन मात्र से सर्वथा निष्पाप हो जाता। श्रुति ने कहा है कि—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ (तै.उ

और बालि की दृष्टि में श्रीरामजी परब्रह्म ही थे—

कहा बालि सुनु भीरु प्रिय समदरशी रघुनाथ ।
"धर्म हेतु अवतरेहु गुसाईं ॥

और इन्द्रांश होने से बहुत कुछ सात्विक संस्कारोपपन्न था ही। तमोगुण अहंकारादि तो उसमें तमोगुणी रावण की मैत्री के कारण संसर्गदोष से आगया था। अतः श्रीरामजी के दर्शन मात्र से उसे ज्ञान प्राप्त हो जाना निश्चितप्राय था। तब उसे किसी भी दशा में मारना उचित न माना जाता और बालि के न मारे जाने से कई तरह की हानियों का होना अनिवार्य था

जैसे—१-प्रतिज्ञा की हानि-

सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान ॥

२-मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः ॥ ४९ ॥

राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम् ।

कण्ठे बध्वा प्रदद्यांतेऽनिहतं रावणं रणे ॥ ५० ॥

न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् ।

आनयेयं तवादेशाच्छ्वेतामश्वततरीमिव ॥ ५१ ॥

(वा०रा०४।१७।४९-५१)

के अनुसार सीताजी को ही छीनकर सन्तुष्ट न हो जाता अपितु रावण को भी बल पूर्वक रामजी से माफी मँगवा देता। अतः जब श्रीसीताजी वहीं आजातीं तो रावण से भी समर न करना पड़ता । तब तो-

३-लोकप जाके बन्दी खाना ।

के अनुसार जो रावण का बन्दीगृह बसाये थे उन देवताओं को बन्दी अवस्था न छूटती । ४-जो सर्वसाधारण लोग भी यज्ञादि शुभ काम रावण के कारण नहीं कर पाते थे, वे लोग वैसे ही ऐहिकामुष्मिक साधनों से वंचित रह जाते । इन्हीं सब अनेक कारणों से रावणादि राक्षसों का मारना आवश्यक था और बालि को मारे बिना रावण का मारना बनता नहीं, एवं मारने के पहले यदि बालि सन्निकट से अच्छी तरह श्रीरामजी का दर्शन पा जाता तो वह वधार्ह रह ही न जाता। इन्हीं कारणों से बालि को व्याध इव अर्थात् निर्दयता पूर्वक मारा । यहां व्याध की नाई मारने का अर्थ छिपकर मारना नहीं है । अपितु जब ठीक हृदय के बीच निशाना साधकर-बाण तानकर मारा तो समझने की बात है कि बिना सामने हुये हृदय-वक्ष स्थल में निशाना साधा ही

नहीं जा सकता । इस पर विस्तार से जानने के लिये मेरी "श्रीराम स्वभाव" नामक प्रकाशित पुस्तक देखिये । बालि ने कहा था कि आपने धर्म हेतु अवतार लिया है । और सबसे बड़ा धर्म दया है—

'धर्म कि दया सरिस हरि जाना ।' 'परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा।' परन्तु व्याध में दया होती ही नहीं व्याध हिंसक अतएव दया-रहित होते हैं । माता, पिता, गुरुजन, राजा या शासक किसी अपराधी को पीटते हैं तो निर्दयता पूर्वक नहीं, भीतर दया रख-कर; क्योंकि अपराधी के सुधार की भावना रहती है । परन्तु व्याध मार डालने के लिये ही प्रहार करता है । बालि को निर्दयता पूर्ण प्रहार की चोट का अनुभव है—

परा विकल महि शर के लागे ।

इसी कारण उसे व्याध की नाईं मारना कहा ।

शंका–४६

माहि जानि अति अभिमानव प्रभु कहहु राखशरीरहीं ।
असकवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करहि बबूरही ॥

यह सर्वाधिकप्रचलित गीताप्रेस के रामचरित मानस का पाठ है। परन्तु शरीर और बबूर का तुकान्त नहीं मिलता । ऐसा क्यों ? जब कि यह छन्द भिन्न तुकान्तका नहीं ।

(महाकवि 'सिरस' बछरावा)

समाधान

शंख गल कमल कोदंड-कर-कंज नैन
कानन लौं जाइदीन बिपति सुनावहीं ।
चन्द्रकान्ति-चारु-हास चटक सुनासामणि
भूषण बसन माल अंग में सुहावहीं ॥

मणिन जटित चित्र चन्द्रिका चमक शीश
केशकान्ति नागिनीन छटा दिखरावहीं।
राम अंक रत्नपीठ लसै बन्दौं देवी सीय
आश्रित 'कुमार' की कुदुरित दुरावहीं॥

आप कवि हैं इसलिये उक्त दोष पर दृष्टि आना स्वाभाविक ही है। परन्तु वह दोष भाषा रामचरितमानसकार का नहीं है, प्रत्युत वह दोष सस्कृतानभिज्ञ स्वयंभू संपादकों, संशोधकों अथच टीकाकारों अथवा कई पुराने प्रतिलिपिकारों का है। संस्कृत में बाँस के नवीन अंकुरों को करीर कहा जाता है। यथा—

बंशाङ्कुरे करीरोऽस्त्री। (अमरकोष मेदिनीकोष)

वैद्यक में इसके गुण दोषों का भी वर्णन है। यथा—

बंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशोधनः।
छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्त्रव्रणशोथजित्॥ १५ ॥
तत्करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः।
कषायः कफकृत् स्वादुर्विदाही वातपित्तलः॥१५४॥
(भावप्रकाश निघंटु-गुडूच्यादिवर्ग)

यही नहीं प्राचीन महाकवियों ने भी करीर शब्द को बंशांकुर के ही अर्थ में ग्रहण किया है। देखिये—

हिमांशुवंशस्यकरीरमेव मां निशम्य किन्नासि फले ग्रहिग्रहा॥
(नैषध ६।१२)

आनिन्यिरे बंशकरीरनीलैः॥ (माघ)

कई संस्कृतज्ञ विद्वानों ने अपने सम्पादित प्रतियों एवं टीकाओं में करीर पाठ ही रखा है। जैसे—

१-सन् १८६६ ई० में छपी मुरलीधर नागर ब्राह्मण की प्रति।
२-सन् १८८० ई० में छपी नवल किशोर प्रेस में रघुनाथदासंसिघी

कृत मानसदीपिका टीका सहित ।
३-सन् १८६० ई० में छपी पं० वन्दीदीन दीक्षित की प्रति ।
४-शीलावृत्ति टीका । (श्रीहरिदासजी रायबरेली)
५-मैनपुरी टीका । (पं० शुकदेवलालजी श्रीवैष्णव)
६-संजीविनी टीका विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादमिश्र की
७-दीनहितकारिणी टीका श्रीरामप्रसादशरण की
८-बालविनोदिनी टीका जगन्नाथपुरी वाले—
महान्त श्रीगंगादासजी की आदि ।
अतः शुद्ध पाठ है—

मोहि जानि अति अभिमानबश प्रभु कहहु राखु शरीरहीं ।
अस कवन शठ हठि काटि सुरतरु वारि करिहि करीरहीं ॥

शंका ५०

बालि की पत्नी का नाम तो गोस्वामीजी ने कईबार लिखा परन्तु सुग्रीव की पत्नी का नाम न लिखकर क्या भूल नहीं किया ? सुग्रीव की पत्नी का क्या नाम था ? (दातार सिंह यादव शिवपुर)

समाधान

नित्यं स्मरणीयां तारां नीतिज्ञानविशारदाम् ।
वीरपत्नीं वीरमातां रामभक्तां नमाम्यहम् ॥

सुग्रीव की पत्नी का नाम रुमा था । देखिये बा०रा०कि०कांड—

रुमाँ च भार्यामुपलभ्य वीर्यवानवाप राज्यं
त्रिदशाधिपो यथा ॥ (२६।४२)
रुमां तु वीरः परिरभ्यगाढ़म् ॥ (३३।६६)
रुमां मां चाङ्गदं राज्यं धनधान्यं वसूनि च ।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥ (३५।१३)

सुग्रीव पत्नी रुमा का नाम न लिखकर गोस्वामीजी ने किसी

प्रकार की भूल नहीं की है। गोस्वामीजी प्रायः उसीका नाम लेते हैं जिसका श्रीराम या श्रीरामचरित से कुछ भी सम्बन्ध रहता है। श्रीगोस्वामीजी ने तारा का नाम इसलिये लिया है कि-

१-तारा ने वाली को श्रीराम परत्व समझाया था।

२-तारा की माया हरण करके स्वयं श्रीरामजी ने ही तारा को ज्ञान एवं ज्ञान का फल परम भक्ति दिया था।

३-तारा ने स्वयम् समझा बुझा कर श्री लक्ष्मण जी का क्रोध शांत किया था।

४-नित्य स्मरणीया परम भक्ता पांच महिलाओं में तारा भीं एक नित्य स्मरणीया भक्ता नारी है। स्मरणीया पांच भक्तायें ये हैं—

अहल्या, द्रौपदी, तारा, सीता, मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

(शुक्ल यजुर्वेदीय अह्निकसूत्रावली)

५-श्रीरामजी के षोडश मुख्य पार्षदों में एक परम भागवत वीरवर बड़भागी अङ्गद जी की जननी होने का सौभाग्य तारा ही को प्राप्त था। यथा वा० रा० कि० कांड—

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया। (२१।४)
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः। (२२।११)
उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना। (२३।२२)
यथापुत्रं गुणश्रेष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम्।
स ममादर्शनाद् दीनो बाल्यात्प्रभृतिलालितः॥
बालश्चकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः॥ (१८।५१-५२)

शंका ५०

तारा के अतिरिक्त और चार पचकन्यायें कौन-कौन हैं ? वे किसकी सन्तान हैं ? क्यों स्मरणीया हैं ? (नारायण प्रसाद साड़िया

समाधान

प्रभु सु प्रेम पूरित परम, पंचपतिरतानाम।
पढ़त प्रात उठि प्रेम पगि पातक पाव न ठाम॥

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से शके १८४९ में प्रकाशित यजुर्वेदीय 'आह्निककर्मसूत्रावली' के पृष्ठ २६ पर पुण्य श्लोक स्तुति प्रकरण में आचारमयूख का श्लोक है कि—

अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा।
पंचकं ना स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम्॥

कहीं कहीं शब्द सन्धि नियमानुसार 'पञ्चकन्ना' ऐसा भी लिख दिया जाता है। संस्कृत न जानने वाले अपने अज्ञान से उसे 'पंचकन्या' पढ़ने लगे, जिससे उक्त शंका की सृष्टि करके मूर्खों ने पौराणिक आख्यानों का मखौल करने का व्रत लेकर महापातकी हो जाना स्वीकार कर लिया है। संस्कृत भाषा से थोड़ी भी जान पहचान रखने वाले जानते हैं कि ऋकारान्त नृ शब्द का प्रथमा विभक्ति अर्थात् कर्त्ता कारक में ना, नरौ, नरः रूप बनता है। षष्ठी विभक्ति (संबन्ध कारक) में बेकल्पिक दीर्घ करने के लिये महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में "नृ च। ६।४।६ सूत्र की सृष्टि की है। अस्तु

"ना" का अर्थ होता है 'नर-मनुष्य' तात्पर्य जो मनुष्य उक्त पाँच देवियों का नाम नित्य स्मरण करता है उसके महापातक सम्बन्धी सूक्ष्म संस्कारों का नाश हो जाता है।

इनके संबंध में आपने तीन प्रश्न पूँछे हैं।

१—ये पाँचो कौन है ?

उत्तर—अहल्या महर्षि गौतम की धर्मपत्नी, द्रौपदी पाण्डवों की धर्मपत्नी, तारा बानराधीश बालि की धर्मपत्नी, सीता राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र जी की धर्मपत्नी, और मन्दोदरी राक्षस राज दशानन रावण की धर्मपत्नी थीं।

२—ये पाँचो किसकी सन्तान हैं ?

उत्तर—अहल्या ब्रह्मा की मानस पुत्री थी।—

ततो मया रूपगुणैरहल्यास्त्री विनिर्मिता । वा०रा०७।३०।२२

सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विता ॥ ब्रह्मपुराण ८७।२

दौपदी महाभारत विख्यात यज्ञाग्नि कुण्ड समुद्भूता एवं पांचाल नरेश द्रुपद की पालिता कन्या थीं। इनका मुख्य नाम कृष्णा अथच याज्ञसेनी था।

सीता सीरध्वज जनक की पालिता पृथ्वी की कन्या थीं।

तारा सुषेण बानर की कन्या थीं।

अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम बानरम् ।

तारायाः पितरं राजा श्वसुरं भीमविक्रमम् ॥ वा०रा०४।४२।२

मन्दोदरी—महाशिल्पी परम वैज्ञानिक दानवाधीश मयासुर की कन्या थी—'मयतनुजा मन्दोदरी नामा'

—विशेष देखिये बाल्मीकीय रामायण में जुड़ा हुआ उत्तरकाण्ड सर्ग ३२

३—ये पांचो क्यों स्मरणीया हैं ?

उत्तर—वे पांचों ही अनन्य श्री हरिअनुरागिणी थीं और—

पूजनीय प्रिय परम जहांते । मानिय सब रामहि के नाते ॥

"नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं ॥ विनय पत्रिका

इन पांचों का प्रभुप्रेम रामायण एवं महाभारत में विस्तार पूर्वक वर्णित है। संकेत ये हैं—

अहल्या-रघुपति कृपा भक्ति पाई ।
द्रौपदी-द्रौपद्या सहिताः सर्वे नमश्चक्रुर्जनार्दनम् । (महाभारत वन प
द्रौपदीजी की प्रेम परवशता से ही तो—
तुलसी कियो इगारहों बसन वेष यदुनाथ ।

श्रीसीता जी "गिरा अर्थ जल बीचि सम" अभिन्न होते हुये भी लोक व्यवहार में निरन्तर 'रामचरन अनुरागी"
जिहि बिधि कृपा सिन्धु सुख मानहिं । सोइ कर सिय सेवा विधि जानहिं
निजकर गृह परिचर्या करई । रामचन्द्र अयसु अनुसरई ॥
तारा-तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया
उपजा ज्ञान चरन तब लागी । लीन्हिसि परमभक्ति बर माँगी ।
मन्दोदरी-मन्दोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहिं' ॥

शंका २५

सुग्रीव की किस पत्नी का हरण बाली ने किया और उसका आगे क्या हुआ ? (वि०वि छत्रे, बीजापुर)

समाधान

जयति अति बली राम जय श्रीलक्ष्मण बलसीव ।
जय हनुमत राघव अनुग जय कपि पति सुग्रीब ॥

सुग्रीब की एकही पत्नी थी नाम था "रूमा" उसी को बालि ने बलात् हरण कर लिया था । बालि के मरने के बाद वह स्त्री रूमा सुग्रीव को पुन वापस मिली और सुग्रीव ने सहर्ष उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया—

पावा राजकोश पुर नारी ।

क्योंकि अहल्या की तरह अपनी इच्छा से रूमा ने अपना सतीत्व नष्ट नहीं किया था, किन्तु बालि ने उसके साथ बलात्कार

किया था। इसलिये रुमा सर्वथा निर्दोष थी।

शंका ५३

'बालि को मायावी ने मारडाला' इस कल्पना से सुग्रीव वास आया। बालि के पुत्र अंगद के होते हुये मन्त्रियों ने सुग्रीव को ही राज्य क्यों दिया? दुबारा पुनः राम जैसे न्यायप्रिय ने सुग्रीव को ही राज्य देकर अंगद के साथ अन्याय क्यों किया?

(वि० वि० छत्रे, बीजापुर)

समाधान

सब कलि कलुष नशाइ जो देति परम पद दीठि।
हृदय विकासति शुभ सुगुन, जयति सो गुरुपदपीठि।

पद्मपुराण पातालखण्ड अध्याय ११६—

षष्टि सहस्रवर्षादर्वाक् अशीतितमे वर्षे
रक्षोः युद्धे सुग्रीवराज्यमपहृतम् ॥ १६० ॥
पुनश्चवर्षान्तरे प्राहितः बालिना सुग्रीवः पलायितः
अपहृता तस्य च भार्या राज्यं च अपहृतम् ॥ १६१ ॥

में तारा के उक्त कथनानुसार बालि की मृत्यु से साठ हजार अस्सी वर्ष पहले मायावी काण्ड हुआ था, उस समय तो अंगद का जन्म भी नहीं हुआ था। और यदि अंगद का जन्म हुआ होता तो भी मन्त्री लोग सुग्रीव को ही राज्य देते अंगद को नहीं।

जिस देश में जिस कुल में जिस समय जैसा दैशिक एवं कौलिक नियम होता है उसे पालन करने के लिये महान से महान पुरुष भी बाध्य होते हैं यदि उस नियम में कोई नैतिक दोष न हो तो।

श्रीरामकालीन त्रेतायुग में भारतीय राज्य प्रथा थी कि जब तक भाई हो तब तक पुत्र राज्याधिकारी नहीं होता था, भाई के बाद ही पुत्र का राज्यासन पर अधिकार होता था। जैसे मिथिलेश सीरध्वज

जनक ने संकाशी के अत्याचारी राजा सुधन्वा के आह्वान पर उसे युद्ध में मार कर उसका राज्य अपने भाई कुशध्वज को दे दिया, अपने बेटे वीरध्वज लक्ष्मीनिधि को नहीं। यद्यपि कि संकाशी का राज्य तिरहुत से बहुत बड़ा था। महाराज दशरथजी ने महारानी कैकेयी से कहा था कि राम के बाद भरत का ही यौवराज्य होगा, राम के बेटे का नहीं—

सजहि सुलोचनि मंगल साजू। कछु दिन गये भरत युवराजू॥

स्वयं महारानी कैकेयी ने भी मंथरा से कहा था कि राम के बाद भरत ही राजा होंगे--

संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्। (वा० रा० ८।१५)
भरतश्चापि रामस्य ध्रुवं वर्षशतात् परम्।
पितृपैतामहं राज्यमवाप्स्यति नरर्षभः॥ ८।१६॥

द्वापर में भारत सम्राट् कौरवेश दुर्योधन के बहुत पुत्र थे, जो एक से एक वीर और लायक थे। परन्तु दुर्योधन ने-महाभारत युद्ध के बहुत पूर्व ही अपने किसी पुत्र को युवराज नहीं बनाया था, अपितु भारतीय राजप्रथानुसार अपने भाई दुश्शासन को युवराज बनाया था और सभी लोगों को ज्ञात था और तभी सब कोई दुश्शासन को ही युवराज कहते थे। यथा--

कर्ण--आ:कार्शक्तिवृकोदरस्य मयिजीवति
युवराजस्य दु:शासनस्य च्छायामप्याक्रमितुम्।
युवराज! न भेतव्यम् न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि॥
(बेणी संहार नाटक अंक ३)

दुर्योधन—हा! वत्स दु:शासन! ....हा युवराज! क्वासि?
प्रयच्छ मे प्रतिबचनम्॥ (बे० स० अंक ४)

आज से लगभग बीस पच्चीस वर्ष पूर्व जब तक कि कांग्रेस के मन-

हूण चरण भारत के निकटतम पड़ोसी हिन्दू राज्य नेपाल में प्रवेश नहीं किया था तब तक नेपाल के सूर्यवंशो राज राणा के भाई के बाद ही पुत्र राजा हुआ करते थे, वह भी सब भाइयों के पुत्रों में जो अवस्था में सबसे बड़ा होता था उसके बाद उसके भाइयों को क्रमशः राज्य मिलता। प्रयाग की सुप्रसिद्ध सरस्वती पत्रिका में एक विद्वान् का लेख निकला था कि—

> "यह तो सभी मानते हैं कि बालि सुग्रीव किसी आर्य जाति के नहीं थे। और अनेक जंगली जातियों में आज भी यह नियम है कि बड़े भाई के मरने पर उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई ही होता है।"

(सरस्वती नवम्बर १९५८ ई० पृष्ठ ३६५)

तत्कालीन उक्त भारतीय राजपरम्परा के अनुसार ही राम जी ने बालि को मारने के बाद बालि के बेटे अंगद को राज्य न देकर--

राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कह युवराज ॥

इसमें किसी प्रकार का अन्याय नहीं किया।

शंका—५४

पिता बचन मैं नगर न जाऊँ ॥

पर भाव सुना था कि दशरथ ने कैकेयी से बचनबद्ध होकर व्याह किया था कि कैकेयी का पुत्र ही राज्याधिकारी राजा होगा। अन्य रानियों का पुत्र नही। तो क्या यह भी वाक्य बद्धता थी कि अन्य रानियों के पुत्रों को बनवास दे दिया जायेगा ?

(रामचन्द्रलाल सामन्त एम० ए० अकबरपुर)

समाधान

नारि नहीं तिहुँकाल कहूँ गुण रूपमयी जिमि केकय जाई।
भूप जुरे बहु देशन के, जयमाल गरे अवधेशहि नाई ॥

संगर में रथ चालित कै, सजि बाण धनू सब शत्रु नशाई ।
'रामकुमार' सुतीनिहुँ काल करै पदपद्म प्रणाम सदाई ॥

प्राचीन काल में कैकय देश (काकेशिया) के कौतुक मंगलमय गिरिब्रज नगराधिपति शुभमति वाले राजा अश्वपति की अशेष गुण एवं अप्रतिम रूपवाली कन्या रूपमालिनी (कैकेयी) ने स्वयंबर में जयमाल देकर दशरथ जी को वरण किया एवं युद्ध में रथ संचालन करके दशरथ को विजय दिलाया तब दशरथ के बहुत आग्रह करने पर बरदान को थाती रक्खा। इन सब बातों का विस्तृत वर्णन भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित जैन पद्मपुराण प्रथमखण्ड के चौबीसवें पर्ब (अध्याय) में १३५ श्लोकों में है। जिसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

तत्र सुन्दरसर्वांगा चारुलक्षणधारिणी ।
नितराँ कैकयी रेजे कलानां पारमागता ॥ ५ ॥
बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राजन्समासतः ।
तस्या वर्षशतेनापि दुःशक्यं रूपवर्णनम् ॥ ८५ ॥
पित्रा प्रधारितं तस्या योग्यः कोऽस्या भवेद्वरः ।
स्वयं रुचितमेवेयं गृह्णात्विति विशंसयम् ॥ ८६ ॥
तदर्थं पार्थिवाः सर्वे बसुमत्यामुपाहृताः ।
हरिवाहननामाद्याः पुरो विभ्रमभूषिताः ॥८७ ॥
गतो दशरथोऽप्यस्य जनकेन सह भ्रमन् ।
स्थितः स तादृशोऽप्येतान् लक्ष्म्या प्रच्छाद्य भूपतीन् ॥ ८८ ॥
भ्राम्यन्ती सा ततः साध्वी नरलक्षणपंडिता ।
कण्ठे दशरथे न्यासदृष्टिर्नीलोत्पलस्रजम् ॥९०॥
भूपालनिवहस्थं तं सा ययौ चारुविभ्रमा ।
राजहंसे यथा हंसी बकवृन्दव्यवस्थितम् ॥ ९१ ॥

भावमाला गृहीतेऽस्मिन् न्यस्ता या द्रव्यमालिका ।
पौनरुक्तं प्रपेदेऽसौ लोकाचारकृतास्पदा ।।९२।।

× × ×

उतार्य केकयी चाशु रथवाहं रणाङ्गणे ।
तस्थौ पौरुषमालम्ब्य तोत्रप्रग्रहधारिणी ।। १०३ ।।

सत्योपाख्यान में तो संकेत मात्र है कि—

स्वयंवरे नृपाद्बलः मयावृत्तः स मन्थरे [८, ३०]

बँगला-कृत्तिवास रामायण बालकाण्ड सर्ग २५ में कुछ विस्तार से है कि—

गिरिव्रज नगरे ते कैकेकेरघर । सुखे राज्य करे राजा अनेक बत्सर ।।
कैकेयी नामाते कन्या परमासुन्दरी । तारूपे आलो करेसेईराजपुरी।।
स्वयंबरा हवे कन्या हेन आछे मन । पृथिवीने राजा के करिल निमंत्रण ।।

× × × ×

प्रत्यक्षे देखिल कन्या सब राज गणे । सबारे भूलिल दशरथ दरशने ।।
धन पेयेतुष्टे जेन दरिद्रे मति । गले माला दिया बले तुमि हबो पति ।।
दशरथ भूपतिर गले माला दोले । लज्जाय भूपतिगण कथं नाहि तोले।।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कैकेयी का स्वयंबर हुआ था, प्रतिज्ञा बद्ध बिवाह नहीं।

कितने ही बुद्धि के शत्रु अक्षर प्रेत लोग संस्कृत में लिखे श्लोक मात्र को मंत्र वत् यथार्थ प्रमाणिक मान लेते हैं। वे भले लोग यह नहीं सोचते बिचारते कि यदि प्रतिज्ञाबद्ध बिबाह हुआ होता तो कैकेयी को कोप भवन क्यों जाना पड़ता और यह क्यों कहना पड़ता कि—

देन कहे बरदान दुइ ते पावत सन्देह ।

पुनः देखिये वा०रा० अयो० सर्ग ११—

स्मर राजन् पुरा वृत्तं तस्मिन्देवासुरे रणे ।
तत्र त्वां च्यावयेच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ॥ १८ ॥
तत्र चापि मयादेव यत् त्वं समभिरक्षिताः ।
जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ बरौ ॥१९॥
तौ दत्तौ च वरौ देव निक्षिप्तो मृगयाम्यहम् ॥ १० ॥

इसका पूर्ण विवरण इसी काण्ड के सर्ग ९ के श्लो० ११ से १७ तक देखिये । किसी ने दशरथ जी और रामजी को क्रमशः मिथ्यावादी और अभिषेकलिप्सु सिद्ध करने के लिये वा०रा० अयो० सर्ग ४ में श्लोक २४ से २७ तक चार श्लोक और सर्ग १०७ में दूसरा और तीसरा श्लोक मिला दिया है । इन मिलाये हुये छ श्लोकों की यथार्थ संगति भी नही बैठती ।

शंका–५५

सद्गुरु मिलेते जाहि जिमि संशय भ्रम समुदाय ।

सद्गुरु की पहिचान क्या है ?

गुरु विरोध नहि कोउ जगत्राता ।

साधारण गुरु हों उसे त्यागकर मानसोक्त गुरु या दूसरा सद्गुरु किया जाय तो क्या हानि, यानी गुरु विरोध का दोषी तो न होना पड़ेगा ? (रा०कि० हेमकार)

समाधान

अमितकोटिरहस्यविशारदं ह्यमितभीतिहरं करुणाकरम् ।
अमितकोटिकटाहबिचारकं नमत वानरराजमिहाद्भुतम् ॥

(क) परमदयावती भगवती श्रुति ने गुरु (सद्गुरु) का लक्षण बताते हुये कहा है कि–

गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् । (मण्डकोप.२।१२)

और इसीकी व्याख्या करते हुये दूसरी श्रुति में बताया गया है कि–

आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मंत्रज्ञो मंत्रभक्तश्च सदामंत्राश्रयः शुचिः ॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषतः ।
एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥ (अद्वयतारकोप०)

अर्थात् आचार (सदाचार) युक्त, साँगवेद का ज्ञाता, वैष्णव, मत्सर (दूसरे के उत्कर्ष की असहनता) से रहित, सरहस्य मंत्रराज तारक ब्रह्म (षडक्षर राममंत्रराज) का ज्ञाता इष्टमत्र में निष्ठा रखने वाला, सतकाल इष्टमंत्र के आश्रित रहने वाला, बाह्याभ्यंतर पवित्र रहने वाला, अपने श्रीगुरुदेव में श्रीहरि के समान भक्ति रखने वाला और बिशेषतः पुराणों को खूब अच्छी तरह जानने वाला हो । ये सब उपरोक्त समस्त लक्षण जिनमें हों उन्हीं से भगवन्मंत्र की दीक्षा प्राप्त करनी चाहिये वही दीक्षागुरु हो सकते हैं । इसी अर्थ को स्मृतियों ने भी समझाया है।

सत्सम्प्रदाय संयुक्तो मंत्रराजार्थकोविदः ।
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नो वेदवेदांगपारगः ॥
गुरवो निर्मलाः शान्ता साधवो मितभाषिणः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः भगवद्भक्ता जितेन्द्रियाः ॥ (स्मृति संग्रह)

अर्थात् जो सत्सम्प्रदाय निष्ठ (पंथाई अवत अवैदिक पुराण विरोधी सम्प्रदाय के नहीं) तारक ब्रह्म (षडक्षर श्रीराम मंत्र) राज के तात्विक रहस्यों के ज्ञाता, भगवत् तत्व के जानने वाले (ज्ञानी)बाह्याभ्यन्तर विषय लोलुप्ता रहित अर्थात् परम वैराग्यवान्, वेदवेदांगो के रहस्यों के पूर्ण पारगामी, बाह्याभ्यंतर स्वच्छ शान्त, सदाचारी, सत्य एवं मित भाषी, कामक्रोधादि विकारों से उन्मुक्त, सच्चे भगवतद्भक्त और शमदमादि सम्पन्न जितेन्द्रिय हों । वे ही दीक्षा गुरु हो सकते हैं, । इन्हीं से पंच संस्कार युक्त

होकर मंत्र लेना चाहिये

(ख) गुरु के विषय में वैष्णवधर्म रत्नाकर में बतलाया गया है कि–

मधुलुब्धो यथा भृंगः पुष्पात्पुष्पांतरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ।। (वैष्णव रत्नाकर)

मधु लोभी भौंरा जैसे एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाता है उसी तरह जिज्ञासु पुरुष को ज्ञान प्राप्ति के लिये एक गुरु के पास से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिये। परन्तु भ्रमर जैसे– विकसित कमल को पाकर फिर दूसरे कमल पर नहीं जाता है, उसी तरह जिज्ञासु को चाहिये कि जबतक शास्त्रोक्त योग्य भगवत्तत्ववेत्ता गुरु न मिले तबतक 'गुर्वन्तरं व्रजेत्' के नियम को चालू रखें, परन्तु यह बात ज्ञान एवं विद्या प्राप्तिके लिये है दीक्षा के लिये नहीं । दीक्षा के संबन्ध में दूसरा नियम है; वह यह कि शास्त्रो में पंचोपासना का वर्णन है । गाणपत्य, सौर, शाक्त, शैव और वैष्णवोपासना का क्रमशः विधान है । अर्थात् गाणपत्योपासना के बाद सौरोपासना का अधिकार एवं योग्यता प्राप्त होती है सौर के बाद शाक्त, शाक्त के बाद शैव और शैवोपासना के बाद वैष्णवोपासना की योग्यता एवं अधिकार प्राप्त होता है। जैसा कि ब्रह्मपुराण में भगवान् वेदव्यास जी ने बताया है कि–

गाणपत्यादिषु या भक्तिः पुनश्चाग्नौसमाहितः ।
तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवतिभास्करे ।।
प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शक्तिके ।
शक्तेस्तुष्टे ततस्तस्य भक्तिर्भवति शाम्भवे ।।
तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे ।
ततो भुक्तिं च मुक्तिं च सम्प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ।।

(ब्रह्मपुराण २८८।६–१

इसी तथ्य को लक्ष्य करके भुशुण्डिजी के गुरू वैदिक ब्राह्मण ने (

परमशैव थे) कहा था कि--

शिव सेवा कर फलसुत सोई । अविरल भक्ति रामपद होई ॥

ऐसा क्रम अनेक जन्मों के संस्कार से होता है। सिद्धान्त यह है कि गणपति मन्त्र के बाद अग्नि, सूर्य, शक्ति, शिव, बिष्णु आदि का मन्त्र लिया जा सकता है परन्तु सौर मन्त्र के बाद शक्ति, शिव, एवं विष्णु का मन्त्र तो लिया जा सकता है परन्तु अग्नि गणपति आदि अन्य देवतों का मन्त्र नहीं लिया जा सकता। शक्ति मन्त्र के बाद शिव एवं विष्णुके मन्त्र तो लिये जा सकते है परन्तु सौरगाणपत्यादि मन्त्र नहीं लिये जा सकते इसी तरह शिव मन्त्र के बाद केवल वैष्णव मन्त्र लिया जा सकता है परन्तु शाक्त सौरगाणपत्यादि मन्त्र नहीं लिये जा सकते और वैष्णव मन्त्र के बाद तो शैवादि कोई मन्त्र नहीं ही लिये जा सकते हैं। वैष्णव मन्त्रों में भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मन्त्र लिये जा सकते हैं। वैष्णव मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ श्री राममन्त्रराज है इससे श्रेष्ठ कोई नहीं है—

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका ॥
राम सकल नामन ते अधिका।

....राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडुगण विमल।

गाणपत्यादि मन्त्रों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता के सम्बन्ध में विस्तार के लिये तो अनेकों ग्रंथ देखे जा सकते हैं कुछ प्रमाण यहां भी देख लीजिये। ये निम्नलिखित प्रमाण संग्रह ग्रन्थों में निहित हैं।

सुतीक्ष्ण मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णवमुच्यते ।
गाणपत्यादि सौरेषु शाक्तशैवेष्वभीष्टदः ॥
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः ।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ (अगस्त संहिता)
सर्वेषां मन्त्रवर्याणां श्रेष्ठो वैष्णवमुच्यते ।

तेषु वैष्णवमन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥ (शिव संहिता)
राममन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा गृह्णात्यन्यं तु यः पुनः ।
नरकान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
राममन्त्रं समादाय ये त्वन्यं मन्त्रमिच्छति ।
गृहीताप्राप्नुयात्पापं दाता च नरकं व्रजेत् ॥
(भुशुण्डि रामायण)
गृहीत्वा वैष्णवात्सम्यङ्मन्त्रराजं षडक्षरम् ।
अन्यमन्त्रं जिघृक्षेच्चेद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
अवैष्णवोपदेष्टायस्त्वन्यमन्त्रेरतोपिच ।
वैष्णवाद्विष्णुमन्त्रेण पुनर्संस्कारमर्हति ॥
(नारद पांचरात्रीय पौष्कर संहिता)
लब्ध्वाषडक्षरं मन्त्रं रामस्य परमात्मनः ।
मन्त्रांतरं प्रयत्नेन वर्जयेन्मन्त्रतत्त्ववित् ॥
(नारद पांचरात्रीय सुदर्शन संहिता)
अवैष्णवोपदिष्टं चेत् पूर्वमन्त्रं परित्यजेत् ।
पुनश्च विधिनासम्यग्वैष्णवात्प्राप्नुयान्मुने ॥
(पद्म पुराण उत्तर खण्ड २२६)

लोक में साधरणतया यह प्रचलित प्रथा है कि वैष्णव मंत्र जब एकबार किसी स्वधर्मनिष्ठ वैष्णव से ग्रहण कर लिया जाता है और उन गुरू से साधन सम्बन्धी ज्ञान अधिक रूप में नहीं प्राप्त किया जा सकता तब अन्य योग्य व्यक्तियों से शिष्यत्व भावपूर्वक शिक्षा ग्रहण की जाती है और उन ज्ञान शिक्षक गुरु को सद्गुरु या सिद्ध गुरु कहा जाता है परन्तु भगवन्मन्त्र देने वाले वैष्णवगुरु में भी गु भावना का त्याग नहीं किया जाता है। हां जिनको वैष्णव मन प्राप्त न हुआ हो उन्हें तो उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार किसी यो

पंचसंस्कारोपपन्न वैष्णव विद्वान् से भगवन्मन्त्र दीक्षा एवं शिक्षा ग्रहण करने में किसी प्रकार का दोषाभास भी नहीं है, प्रत्युतमहानधर्म है। शास्त्रोक्त गुरु मिलने से ही अवैष्णवगुरु को त्यागने में दोष नहीं।

शंका—५६

गोस्वामीजी ने वेद ध्वनि को बालकांड में पक्षियों के कलरव से उपमा दी है—

भवन वेद धुनि अति मृदुबानी। जनु खग मुखर समय सुखसानी॥

और इसीको किष्किधा कांड में दादुरों की टर्टराहट के तुल्य क्यों कहा ? (शालग्राम दीक्षित)

समाधान

वेद पढ़े बिन ब्रह्म को भेद न जानो जात।
तुलसीकृत मानस लखे श्रुति सिद्धांत लखात॥
यह परम प्रिय धनि भूमि भारत भारती बिहारै जहाँ।
अति धन्य संस्कृत नागरी सुर सुधार्तजि सेवत यहाँ॥
धनि धन्य विप्र 'कुमार' पंडित काव्य कौशलमय महाँ।
तिहिमहँ सुभाषित कवित महित सुनित पुजै जावै तहाँ॥

कहा जाता है कि कवि इतना समर्थ होता है कि वह जड़चेतन चराचर सबसे बातचीत कर सकता है। देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, सरीसृप, तृण, वृक्ष, पाषाण, ऋतग, तृजग, सबकी भाषा समझता है। इसीसे अपनी कृति (काव्य सृष्टि) में जड़ चेतन से परस्पर बातचीत को कराता ही है, परस्पर एक दूसरे को उपमान और उपमेय बना डालने में भी संकोच नहीं करता, और "एष कवि सम्प्रदायः" कहकर पल्ला झाड़ निर्दोष भी बना रहता है। ऐसी भावना को लेकर कुछ लोग "निरङ्कुशाहि कवयः" कहकर भाषा श्रीराम चरित मानस के कवि तुलसीदासजी पर निरङ्कुशता का दोषारोपण करते हुए यह भी एक बड़ा भारी अपराध; मानसकार

के सिर पर मढ़ देने का अपराध करते हैं कि उन्होंने जगत पूज्य अथच सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों के वेद पाठ की तुलना--

भवन वेद धुनि अति मृदुबानी। जनु खग मुखर समय सुखसानी॥
दादुर धुनि चहुँ दिशा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥

इन पंक्तिओं द्वारा पक्षियों की चहचहाहट और वेद के विद्यार्थियों के वेदाध्ययन को बरसाती मेढ़कों की टरटराहट से करके प्रच्छन्न रूपेण बेदविदों एवं वैदिक छात्रों का अपमान किया है आदि।

जिन लोगों की जान पहिचान भारतीय सच्छास्त्रों से नहीं रहती वे ही लोग ऐसे उपयुक्त अनर्गल आक्षेप गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी पर लगाया करते हैं। भारतीय सच्छास्त्रों से परिचित लोग तो जानते हैं कि श्री शौनकादि प्राचीनवेद-विद् विद्वानों के ऋक् परिशिष्ट आदि वैदिक साहित्यों में वेदपाठ की आठ विकृतियाँ बतलायी गई हैं--

जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वजो, दण्डो, रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ता क्रमपूर्वा महर्षयः॥
शैशिरीये समाम्नाये व्याडिनैव महर्षिभिः।
जटादौ विकृतीरष्टौ लक्ष्यन्ते नाति विस्तराम्॥

(ऋष-परिशिष्ट)

इन आठ में भी कितनों के अवान्तर भेद हैं, जैसे--
जटा पाठ के दो भेद हैं। पुष्पमाला और क्रममाला रूप से माला पाठ के दो भेद। द्विचक्र त्रिचक्र और चतुश्चक्र रूप से रथपाठ के तीन भेद। और दो प्रकार के घन तथा दो प्रकार के घनवल्लभ रूप से घन पाठ के चार प्रभेद हैं, इस तरह सामान्यतः पन्द्रह प्रकार की ध्वनियाँ वेद पाठ में होती हैं। (शाखा भेद का विस्तार तो बहुत हैं) वैदिक पण्डित गण जब अपने दाता के यहाँ मांगलिक अवसरों

पर वेद ध्वनि करने लगते हैं उस समय सब उपस्थित विद्वान् परस्पर ,'एक स्वर मिलकर ध्वनि करें" ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता, अतएव जो विद्वान् जिस शाखा का पूर्ण ज्ञाता होता है और उसे जिस विकृति (ध्वनि) का पूर्ण अभ्यास रहता है वह विद्वान् उस शाखा के तात्कालिक मन्त्रों को यथावसर अपनी अभ्यस्त ध्वनि में उच्चारण करता है। उस समय सभी विद्वानों का विभिन्न स्वर एक में इस तरह सान उठता हैं अर्थात् घुल मिल जाता हैं कि अलग से सुनने वालों को शब्द कलरव के अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम पड़ सकता है। न तो उस समय शब्द बिन्यास अलग किया जा सकता है और न स्वर प्रभेद ही।

सम्माननीय पाठक कल्पना कर सकते हैं कि जब एक ही स्थान पर और एक ही काल में अनेक विद्वान् अनेक मंत्रों (पद्यों) पर कम से कम पन्द्रह प्रकार से अपना-अपना राग अलग-अलग अलापने लगेगे तो उस समय सबका एक में सना हुआ वेदध्वनि का वह गट्टम गट्ट स्वर कैसा मालूम पड़ेगा ? जैसा सायंकाल में एक स्थान पर अनेकानेक मुखर अर्थात् बहुत चहचहाने वाली पक्षियों का फुदक-फुदक कर कलरव करना। अतएव श्रीरामजन्मोत्सव के आनन्द में श्री दशरथाजिर में अनेक पंडितों की सम्मिलित विभिन्न स्वरों में की गई वेदध्वनिके लिये कहा गया है कि:-

जनु खग मुखर समय सुख सानी ॥

बटु का अर्थ है विद्यार्थी है और विद्यार्थी समुदाय को अध्यापक जब वेदाध्ययन कराता है तो प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों का पाठ अलग-अलग दिया जाता है। उस समय प्रथम तो अध्यापक स्वयं उच्चारण करके बताता है पश्चात् सभी बटु एक स्वर से उसी ध्वनि में असकृत् आवृत्ति करते हैं। वेदों में इसीलिए अध्य-

यन कालीन वेदबटुओं एवं उनके अध्यापकों की ध्वनि एवं शैली आदि को बरसाती दादुरों की ध्वनियों से तुलना की गई है। हम यहां उन कई वेदमन्त्रों को ससन्दर्भ अन्वयार्थ युक्त दे रहे हैं। देखिये ऋ० ७।१०३।१ अथर्व ४।१५।१३, नि, ९,६–

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्य जिन्वितां प्रमण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

व्रतचारिणः = व्रताचरण करने वाले
ब्राह्मणाः = ब्राह्मण समुदाय
सम्वत्सरम् = एक वर्ष तक
शशयानाः = गुप्त रूप से सोये हुए
प्र, मण्डूका = के समान, दादुरगण
पर्जन्यजिन्विताम् = मेघ को प्रसन्न करने वाली
वाचम् = वाणी
अवादिषुः = बोलने लगते हैं।

भावार्थ—'मण्डयति भूषयति जलाशयमिति मडि' शालिमडिभ्यामूकण्। उ० ४।४१ इतिऊकण्। मडि भूषायाम् (भ्वा०प० से०) "सुन्दर रूप से भूषित करना" अर्थ वाली मण्डि धातु से ऊकण् प्रत्यय लगाकर मण्डूक शब्द बनाया जाता है 'सुभूषित करने वाले का नाम मण्डूक है। मण्डूक से तालाब की शोभा होती है और वेदाध्यायी बटुओं से पाठशाला की शोभा होती है, एवं वेदज्ञ ब्राह्मण सभा को भूषित करता है। इसी से श्रुति ने यहां मेंढकों = दादुरों के लिये ब्राह्मणों की उपमा दी है।

व्रताचरण करने वाले ब्राह्मण एक वर्ष तक चलने वाले सत्र में व्रतस्थ होकर मौन धारण करके सोये हुए के समान चुपचाप रहते हैं। व्रत समाप्तिके पश्चात् वैदिकस्तोत्र = गौष्णवीयसूक्तों

का पाठ करने लगते हैं, ऐसे ही दादुरगण अपने-अपने स्थानों में वर्ष भर चुपचाप रहते हैं वृष्टि प्रारम्भ होतेही शब्द करने लगते हैं।

दिव्या आपो यदेनमायन् दृतिं नशुष्कं सरसीशायनम्।
गवामह: न मायुर्वत्सिनं मण्डूकानां वाग्नुरत्रा समेति ॥
(ऋ० ७।१०३।२)

शुष्कम् = सूखी हुई
दृतिम् = चमड़े की थैली के
न = समान
सरसी = ताल अर्थात् सूखे तालाब में
शयानम् = सोने वाले
एनम् = इन मेंढकों के पास
यत् = जिस समय
दिव्या: = आकाश स्थानीय मेघों के
आप: = वृष्टि जल
अभिआयन् = जब पहुँचते हैं तब
अह: = नित्य प्रति कई दिनों तक
वत्सिनीनाम् = बछड़ों वाली
गवाम् = गौओं के
मायु: = शब्द के
न = समान
अत्र = यहां अर्थात् जलाशयों में
मण्डूकानाम् = मेढकों-दादुरों के
वाग्नु: = शब्द
आयन् एति = सब तरफ से खूब होने लगता है।
भावार्थ—ग्रीष्मकाल में जब तालाब सूख जाते हैं तो मेढक

जमीन के नीचे धँस कर चुपचाप बैठ जाते हैं, और कुछ मेढक चमड़े की सूखी थैली के समान सूख भी जाते हैं। परन्तु जब जल वृष्टि होती है और प्रावृट् प्रारम्भ की प्रथम वृष्टि का जल उन मेढकों तक पहुंचता है तो उस समय वे मेढक ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे बछड़े वाली गौयें, और उस आनन्दातिरेक में फूल कर ये मेढक एक बिलक्षण शब्द बोलने लगते हैं।—

"जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥

यदेषामन्या अन्यस्य वाचं शक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषाँ समिवेव पर्वयत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ (७।१०३।५)

यत् = जब
एषाम् = इन मेढकों में से
अन्य = कोई एक मेढकः
अन्यस्य = दूसरे मेढक के साथ
वाचम् = वाणी
वदति = बोलने लगता है तब

शिक्षमाणः शक्तस्य इव = ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे गुरु का कहा हुआ शब्द सब बटु शिष्य गण एक साथ ही उसे

पर्वयत् = बार बार रट (घोष) रहे हैं।
यत् = जब
अप्सु अधि = पानी के ऊपर बार बार कूदते हुए।
सुवाचः = सुन्दर वाणी
वदथन = बोलते हैं। ('वदथन' यहाँ छन्दस् प्रयोग है।
तत् अप्सु अधि = तब इन दादुरों का शरीर
समृधाइव = समृद्ध हुआ-फूला सा दीखता है।
भावार्थ—खूब पानी पड़ने पर मेढक आनन्दमग्न होकर सब

तरफ खूब उछलते कूदते और किलकारी मारते हुए शब्द करते हैं। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु अध्यापक वेद मन्त्र कहता है और शिष्य-बटु समुदाय-छात्र गण उस गुरु कथित ऋचा को बार बार रटते हैं इसकी व्याख्या श्रीवेदव्यास जी ने की है।

(भाग० १०।२०।९)

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयाना प्राग् यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ४ ॥

अर्थात् जैसे मौन धारण किये हुए बटु नित्य कर्म से अवकाश पाने पर गुरु की बाणी सुनकर पढ़ना आरम्भ करते हैं; उसी तरह मेघ का शब्द सुनकर दादुर बोलने लगते हैं।

प्लवंगमः (दर्दुरः) षोडशपक्षशायी विरौति गोष्ठः सह कामिनीभिः।
ऋचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा यथा सुशिष्यैः परिवार्यमाणः ॥

(महाभारतीयखिलपर्व हरिवंशका त्रिष्णुपर्व० ९५।२३)

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्र वाचं पिपिशुर्वदन्ति ॥

(ऋ०७।१०३।६)

एषाम् = इन मेढकों में
एक = कोई एक मेढक
गोमायुः = गाय के समान शब्द करता है।
एकः = और कोई एक मेढक
अजमायुः = बकरे के समान
वदन्ति = शब्द करते हैं तथा—
एकः = कोई एक मेढक
पृश्निः = कुर्बुर-चित कबरा है। तो
एकः = ोर कोई मेढक एक

हरितः = हरे रंग का है। इस तरह से दादुर गण-
विरूपाः = अनेक रूप वाले होते हुये भी
समानं नाम = एक समान नाम अर्थात् मेंढक,
मण्डूक, लवंगम, दादुर, भेंग-आदि नाम ही
बिभ्रतः = धारण करते हैं और ये
पुरुत्रा = अनेक प्रकार के
वाचः = शब्द
वदन्तः = बोलते हुये
पिपिशुः = दिखाई देते हैं।

भावार्थ-जिस तरह वेद का जटा, माला, शिखा, रेखा, आदि अष्ट विकृतियों की पन्द्रह ध्वनियाँ हैं, वैसे ही मेंढकों की विभिन्न ध्वनियाँ मालूम पड़ती हैं।

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
सम्बत्सरस्य तदहः परिष्ठ: यन्मण्डूकाः प्रावृषीणां बभूव ॥
(ऋ० ७।१०३।७

अन्वयार्थ—
अतिरात्रे = अतिरात्र नामक यज्ञ में
न (इव) = जैसे
सोमे = सोमपान में, अथवा सोमयज्ञ में
ब्राह्मणासः = पूर्ण वेदज्ञ लोग यज्ञस्थल में
अभितः = सब तरफ
वदन्त = वेद मंत्र बोलते हैं।
न (इव) = उसी तरह
प्रावृषीणाम् = वर्षा ऋतु में
पूर्णम् = अच्छी तरह

सरः = सरोवरों के भर जाने पर
मण्डूकाः = हे मेढकों !
यत् = जो।
सम्बत्सरस्य = साल (प्रतिवर्ष) का
अहः = वर्षा का दिन है
तत् अहः = वह दिन
परिष्ठः = तुम्हारे चारों ओर घूमने
बभूब = के लिये होता है

भावार्थ—यहाँ ब्रह्मणों के वेदपाठ के समान मेढकों के शब्द की तुलना है। वेद मंत्रों का पदपाठ सस्वर बोलने के समय अवेदज्ञों को दादुर ध्वनिवत् ही प्रतीत होती है।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्राह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणाम्।
अध्वर्यवोधर्मिणः सिष्विदाना आविभवन्ति गुह्य न केचित ॥
(ऋ० ७।१०३।८)

परिवत्सरीणाम् = एक वर्ष तक चलने वाला जो
ब्रह्म = यज्ञ है ×
कृणवन्तः = उसे करने वाले
सोमिनः = सोमयाजी
ब्राह्मणासः = ब्राह्मणगण जैसे
वाचम् = वाक्य अर्थात् वेदमंत्र
अक्रत = बोलते हैं और
घर्मिणः = यज्ञ करने वाले
अध्वर्यवः = ऋत्विग्गण
सिष्विदाना = पसीने से भीगे हुये
केचित् = कई याजक गण

गुह्याः = गुप्त स्थानों में बैठते हैं ×
आविः = और बाहर
न भवन्ति = नहीं आते।

भावार्थ—यहां याजकों की तुलना है। जैसे कुछ याजक मंत्र बोलते हुये मंडप से बाहर आते हैं और कुछ अन्दर ही बैठे रहते है। वैसे ही शब्द करते हुये कुछ मेढक बाहर आकर कूदते हैं और कुछ अन्दर ही बैठे बोलते रहते हैं।

यदीमेनां उषतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।
अक्खलीकृत्य:पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुपनदन्तमेति ॥
(ऋ० ७।१०३।३)

तृष्यावतः = अत्यन्त प्यासे अतः
उषतः = जल चाहने वाले
एनान् = इन मेढकों के पास
प्रावृषि = वर्षा ऋतु के
आगतायाम् = आजाने पर
यत् ईम् = जब यह मेघ
अभिवर्षति = बरसने लगता है
न (इव) = तब जिस तरह
पितरम् = पिता के साथ
पुत्रः = पुत्र बोलता है वैसे
अक्खली = अक्खल-अक्खल शब्द
कृत्यः अन्यम् = एक मेढक दूसरे के पास
उपवदन्तम् = बोलते हुए
एति = जाता है।

भावार्थ-बिना जल के तो सभी प्यासे रहते हैं पर जलचर

होने से मेढक अधिक तृषित रहते हैं। वर्षारम्भ में खूब वृष्टि होने पर मेढक बड़े आनन्दित होकर अक्खल-अक्खल शब्द करने लगते हैं।

अन्योअन्यमनुगृभ्णात्येनोरपांप्रसर्गे यदमन्दिषाताम्।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम्॥
(ऋ० ७।१०३।४

एनोः = इन मेढकों में से
अन्यः अन्यम् = एक दूसरे पर
अनुगृभ्णाति = अत्यन्त अनुग्रह करता है
य त = और जब
अपाम् प्रसर्गे = पानी बरसने पर
अमन्दिषाताम् = मेढकगण आनन्दित होते हैं
यत् = और जब
अभिवृष्टः = खूब वर्षा होने पर
मण्डूकः = मेढकगण
कनिष्कन् = कूदने लगते हैं तब
पृश्निः = कर्बूर-चितकबरा मेढक
हरितेन = हरे मेढक के साथ
वाचम् = बातें करने के समान
सम्पृङ्क्ते = शब्द करता है

भावार्थ—प्रत्यक्ष देखा जाता है कि प्रथम वृष्टि होते ही रंग विरंगे मेढक गण आनन्द मग्न होकर छलाँग भरने लगते हैं और बारी-बारी से ऐसा शब्द करते है मानों परस्पर बातचीत करते हों।

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
सम्वत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ताघर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥
(ऋ० ७।१०३।९)

एते नरः-ये नेता लोग
देवहितिम्-दैवी नियम का
जुगुपुः = संरक्षण करते हैं।
द्वादशस्य = इसलिये बारह महीनों के
ऋतुम् = ऋतुओं को
न प्र मिनन्ति = विनष्ट नहीं करते हैं
सम्वत्सरे = प्रत्येक वर्ष में
घर्माः = कठिन ग्रीष्म से
तप्ता = तपे हुये ये मेढक
प्रावृषि = बरसात का समय
आगतायाम् = आते ही अर्थात् प्रथम वृष्टि में ही
विसर्गम् = अपनी-अपनी बिलों से बाहर
अश्नुवते = निकल आते हैं।

भावार्थ—ये दादुरगण ग्रीष्म में तपते हैं, किन्तु वर्षा शुरू होते ही अपने-अपने बिलों से बाहर आ जाते हैं और खूब आनन्द में भर कर नाचते कूदते हुए शब्द करते हैं। ये दादुरगण ईश्वरीय नियम का पालन करते हैं, चाहिये कि सभी वेदज्ञ ब्राह्मण, समाज के नेता, राष्ट्र के कर्णधार, लोग भी इसी तरह अपने-अपने नियमों का पालन करें।

गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि।
गवां मण्डूकाददतः शतानि सहस्रसावे प्रतिरन्तआयुः ॥ १२ ॥
(ऋ० ७।१०३।४)

गोमायुः = गौ के जैसा शब्द करने वाले ने
नः = हमें
वसूनि अदात् = धन दिया,

पृश्निः = कर्बुर रंग वाले—चितकबरे ने
नः = हमें
वसूनि अदात् = धन दिया और
हरितः = हरे रंग वाले ने
नः = हमें
वसूनि अदात् = धन दिया।
सहस्रसावे = हजारों औषधियों को बढ़ाने वाले और
शतानि = वर्षा ऋतु में सैकड़ों
गवाम् ददतः = गौवें देने वाले
मण्डुकाः = ये मेढकगण
आयुः = हमारी आयु
प्रतिरन्ति = बढ़ाते हैं।

भावार्थ--दादुरों का आनन्द वर्षा का सूचक है, यह वर्णन आलंकारिक है। वेदाध्यन एवं तदनुकूल आचरण करने से लोक में सुख एवं सुयश की वृद्धि होती है और परलोक का मार्ग प्रशस्त होता है जैसे उत्तम वर्षा से उत्तम घास, उत्तम घास से उत्तम गौवें; उत्तम गौवों से प्रचुर धन धान्य और धन धान्य के उचित प्रयोग से पुष्टि (तन्दुरुस्ती) आत्मबल, यश और आयु की वृद्धि होती है।१०।

बटुओं-छात्रों को केवल ध्वनियां मात्र ही नहीं रटाई जाती रहीं अपितु व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जाती रही, और रामचरित मानस के इस वर्षा एवं शरत् के वर्णन में अर्थात् किष्किन्धा काण्ड दोहा १३ से १७ तक की तैंतालीस ४३ उत्प्रेक्षाओं में ऐसी कोई भी उत्प्रेक्षा नहीं है जिसमें व्यावहारिक या आध्यात्मिक शिक्षा की बात न कही गई हो, और किसी-किसी उत्प्रेक्षा में तो दोनों तरह की शिक्षाओं का दिग्दर्शन है। वेद के

इस प्रकरण में कई मन्त्रों में अध्यात्म की ओर भी संकेत है जिसे वेद भाष्यकारों टीकाकारों आदि ने सुस्पष्ट किया है। जैसे—

उप प्रवद मण्डूकि वर्षमावद तादुरि।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१३॥

(अथर्ववेद ४।१५।१६)

मण्डूकि ! = हे मेढकी ! एवं
तादुरि ! = हे मेढक के बच्चे ! तुम सब
वर्षम् = वर्षाऋतु में
उपप्रवद = खूब बोलो और
आवद = सब तरफ से, सर्वत्र बोलो और
चतुरः पदः = चारों पांव
विगृह्य = फैलाकर
ह्रदस्य मध्ये = तालाब के बीच में
प्लवस्व = तैरो

भावार्थ—मण्डूकों की तरह बटुओं—विद्यार्थियों को चाहिये कि परा, पश्यन्ति, मध्यमा, और बैखरी रूपी वाणी के चारों पदों को फैलाकर—विकसित करके हृदयान्तर निवासी अन्तरयामी ईश्वर का गुण-गान करते हुए उसके चिन्तन में मग्न हो जायें।

मूल १०—

खण्वखा खैमथा मध्ये तदुरि।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१४॥

(अथर्ववेद ४।१५।१५)

अन्वयार्थ—

खण्वखे ! खैमखे ! तदुरि ! = हे खण्वखा, खैमखा, और तदुरि संज्ञक तीनों जाति के मेढको !

मध्ये = तुम सब तालाब के मध्य में
वर्षम् = वर्षा बहार का
बनुध्वम् = सुख लूटो
पितरः = हे पितरो, अजा पालको
मरुताम् = आप वायुओं का
मनः = मनन योग्य ज्ञान
इच्छत = प्राप्त करो ।

भावार्थ--खण्वं-आत्मनं खनति इति कण्वखाः छांदसः खकारः। अथवा--खण्त्रे छिद्रं खञ्जति गच्छति वा खण्वखा = ब्रह्म रन्ध्रगामिनी । आत्मा को खोद लेने, पता लगा लेने वाली । खैमखाः = खै खदने (भ्वा० प० अ०) स्थैर्ये हिंसायाँ चेति शब्द कल्पद्रुमः । ततो मन प्रत्ययः । खैम स्थैर्यं खनति पुनः पुनः स्थिरी करोति इति खैमखा पिंगला । तदुरि = "ॐ तत् सदिति निर्देशः ।" गीता १७।२३ तत् ब्रह्म इर्यति इति तदुरि = सुषुम्ना सा च इड़ा पिंगलयोर्मध्ये वर्तमाना भवति ।

जैसे पीत, कर्बुर और हरित तीनों जाति के मेढक वर्षा का आनन्द लेते हैं ऐसे ही तीनों नाड़ियों, मन, प्राण (मरुत) से ब्रह्मानन्द प्राप्त करना चाहिये । सर्व विदित बात है कि पाठशालाओं में केवल वेदों--मन्त्र भागात्मकसंहिताओं मात्र के ही बटु छात्र नहीं रहा करते अपितु वेदांगों के भी अध्यापकों एवं बटुओं का भी रहना अनिवार्य है। वैसे तो वेदों के छः अंग ही विशेष प्रसिद्ध हैं; परन्तु उन छः से ही वेद के नख-शिख का बोध नहीं होता, अतएव विद्वानों ने सोलह अंगों के नख-शिख का वर्णन किया है। वे षोडशाङ्ग निम्नलिखित हैं--

१-छन्दः पादौतु वेदस्य

२–हस्तः कल्पोऽथ पठ्यते
३–मुखं व्याकरणं प्रोक्तम्,
४–निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
५–शिक्षा च नासिका तस्य,
६–ज्योतिषं नयनं स्मृतम् ।
७–आयुर्वेदोऽस्य नाभिस्तु,
८–गान्धर्वो कण्ठ ईर्यते ॥
९–धनुर्वेदस्तु बाहुःस्याद्
१०–अर्थशास्त्रं तथोदरम् ।
११–शिल्पमूरुस्तथा–
१२–मध्यं कामशास्त्रं तु कथ्यते ॥
१३–आधिभौतिकशास्त्राणि देहनिर्मातृधातवः ।
१४–तथाऽधिदैविकान्यस्य प्राणास्पन्दनहेतवः ।
१५–हृद्रजोधर्मः सर्वेषां धारकः प्रेरकस्तथा ।
१६–अध्यात्मशास्त्रं मूर्द्धा चाप्यखिलानां नियामकः ॥

इसीको श्रीगर्गाचार्यजी गर्गसंहिता विश्वजित खण्ड, अध्याय ४४।२३।२४ में लिखते हैं कि--

१–मुखं व्याकरणं प्रोक्तम् ।
२–पिङ्गलः पाद उच्यते ।
३–मीमांसाशास्त्रं हस्तौ च,
४–ज्योतिर्नेत्रं प्रकीर्तितम् ॥२३॥
५–आयुर्वेदः पृष्ठदेशो,
६–धनुर्वेद उरः स्थलम् ।
७–गान्धर्वं रसना विद्धि
८–मनो वैशेषिकं स्मृतम् ॥२४॥

९-सांख्यं बुद्धिः
१०-अहङ्कारो न्यायोवादः प्रकीर्तितः।
११-वेदान्त तस्य चित्तं हि
१२-रागरूपमिदं राजन् विहारं विद्धि मैथिल ॥२६॥

आचार्य श्री वरदराज भट्ट ने भी ऐसा ही लिखा है। देखिये गीर्वाणपद मञ्जरी पत्रा ४—

१-मुखं व्याकरणं तस्य,
२-ज्योतिषं नेत्रमुच्यते।
३-निरुक्तं श्रोत्रमुदिष्टम्,
४-छन्दसां विकृतिः पदे॥
५-शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य,
६-हस्तौ कल्पान् प्रमुच्यते।
७-गुदद्वारं न्यायशास्त्रम्,
८-लिङ्गं वैशेषिकं स्मृतम्॥
९-पृष्ठवंश तु मीमांसा,
१०-११-सांख्ययोगौ तु पार्श्वकौ।
१२-ब्रह्मरन्ध्रं तु वेदान्त इति ज्ञात्वा पठेन्नरः॥

मध्य प्रावृट् काल में श्रावणी उपाकर्म के समय बटुओं की वेद वेदांग ध्वनि होती है और उन्हीं दिनों प्रावृट् काल में ही दादुरों की अनेक ध्वनियाँ भी होती हैं, इन दोनों ध्वनियों की तुलना वेद के कुछ मन्त्रों में ऊपर देखी जा चुकी हैं और :—

"जाकी सहज स्वाँस श्रुति चारी।"

एवं—वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि

निश्श्वसितानि ॥ (१८) (शतपथ ब्राह्मणकाँड १४ अध्या० ५ ब्रा० ४, मं० १० और बृ०उ० २।४।१०+४।५।१०)

वे साक्षात् परब्रह्म श्रीरामजीही ऋष्यमूक पर अपनी ही वेद वाणी को दुहरा रहे हैं । मानसकार तो यहां किष्किधाकाण्ड में श्रीरामजी के कथन का अनुवाद कर रहे हैं । इसीलिये इस कथन का मूल ब्रह्मवाक्य में विस्तार से मिल रहा है ॥

शंका—५७

एकबार कैसेहुँ सुधि पावौं । कालहुँ जीति निमिष महँ लावौं ॥

सुधि पाने के पश्चात् कई महीनों के बाद रघुनाथजीने लंका विजय किया है। तब क्या निमिष मात्र की प्रतिज्ञा मिथ्या थी ?

(ब्रजनन्दन सिंह)

समाधान

राम लखन सीता सहित सानुजभरत कपीश ।
हनुमत अंगद रीछपति सबपद नावहुँ शीश ॥

यह सारा प्रकरण ही नर नाट्य लीलामात्र है । इस प्रकरण का आरम्भ ही—

मैं कछु करब ललित नर लीला ।

के साथ हुआ था, अतएव—

उमा करत रघुपति नरलीला ।

इसलिये अधिकांश नरलीला को ही लक्ष्य में रखते हुये ही इस प्रसंग का समाधान होना आवश्यक है । श्रीरामजी ने श्रीगृद्धराजजी से इतना ही तो सुना है कि—

नाथ दशानन यह गति कीन्ही । तिहि खल जनकसुता हरिलीन्ही ।
लै दक्षिण दिशि गयउ गुसाईं ।

इसके बाद श्रीसीताजी का क्या परिणाम हुआ ? रावण ने

श्रीसीताजी को मारकर काल के घर भेज दिया (क्योंकि किसीके मरकर ही काल के घर जाने की प्रथा है)। अथवा लंका में ही या कहीं अन्यत्र छिपा रखा है, या कैद कर रखा है? श्रीसीताजी मार डाली गईं अथवा जीती हैं दोनों दशा में श्रीसीताजी को प्राप्त करना है, इसलिये दो तरह की प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि दुष्ट रावण ने श्रीसीताजी को मारकर कालके घर भेज दिया होगा तबतो निश्चित खबर पाते ही—

एकबार कैसेहुँ सुधि पावौं। कालहु जीति निमिष महु लावौं॥

और यदि रावण ने श्रीसीताजी को लंका में ही अथवा अन्यत्र कहीं भी छिपा रखा होगा और श्रीसीताजी जीवित होंगी तब के लिये दूसरी प्रतिज्ञा करते हैं कि—

एकबार कैसेहु सुधि पावौं॥

कतहुँ रहइ जौ जीवित होई। तात जतन करि आनौं सोई॥

देखिये रघुबीर चरित महाकाव्य सर्ग सात—

दयितमपहृत्य मायया मम रामस्य तथाविधाँ तथा।
यदि जीवति रावणः क्वचित् धनुरेतत् त्रपयैव सन्नतम् ॥६३॥
यदि गच्छति धातुरन्तिकं यदिवा रुद्रसमीपमाश्रितः।
जगदण्डवहिर्गतोऽपिसन् ममवाणैर्मृगयिष्यते सुखम् ॥६४॥
स्फुटितानिलनेमिसप्तकं शरबह्नयस्तमितेन्दुतारकम्।
शृणु मानद ! मैथिलीकृते गमयाम्बरमम्बरीषताम् ॥६५॥
असुरासुरमर्त्यदुर्धरे विशते व्योम्नि ममास्त्रतेजसि।
इह तावदनूरुसारथेर्भविता फल्गुतमस्फुलिङ्गता ॥६६॥
मम चापविमुक्तसायकस्फुटितब्रह्माण्डकटाहनिःसृतैः।
प्रलयः खलु वारिभिर्भुवनानामपदे विधास्यते ॥६७॥

अतः जब सुधि मिल गई कि सीताजी मरीं नहीं अर्थात् काल

के घर नहीं गई किन्तु जीवित हैं और लंका की अशोक बाटिका में हैं। तब दूसरी प्रतिज्ञानुसार प्रयत्नकरके प्राप्त किया। अतएव किसी भी दशा में--

मृषा न कहौं मोर यह बाना।

कहने वाले श्रीरामजी की प्रतिज्ञा किसी प्रकार भी मिथ्या नहीं हुई।

शंका ५८

जिहि जन पर ममता अरु छोहू। तिहि करुनाकर कीन्ह न कोहू॥
जासु कृपा छूटइ मदमोहा। ताकहं उमा कि सपनेहुँ कोहा॥

इन चौपाइयों से तो साफ है कि भगवान को कभी क्रोध नहीं आता खासकर भक्तों पर परन्तु--

जिहि सायक मारा मैं बाली। तिहि शर हतउँ मूढ़ कहँ काली॥
'लछिमन क्रोधवंत प्रभुजाना।' क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये॥

इन चौपाइयों में श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों का भक्त पर ही क्रोध करना पाया जाता है। अतः दोनों तरह की बातों का समन्वय कैसे होगा? (रामलखन द्विवेदी)

समाधान

पूरब के कर्मन ते विविध शरीर धरौं
स्वर्ग नर्क देव नर लोक सब ताकी है।
पुण्य सब छीण भयो ताते सुख दूरि गयो,
कहूँ कोऊ शक्ति नाहिं राखै गति जाकी है॥
डूबते अनेक बार परि भव सागर में,
तन मन डूबिगे रह्यो न कछु बाकी है।
दीन पा 'कुमार' से न करते दया हो नाथ,
देख ली ये दीनबन्धुता की नई झांकी है॥

(क) जिस तरह भगवान का दिव्य विग्रह सदैव एक साथ ही

माधुर्यैश्वर्य से परिपूर्ण रहा करता है, उसी तरह भगवान के दिव्य गुण भी सदैव साथ-साथ हो माधुर्यैश्वर्य रससे सम्पन्न रहते हैं। तदनुसार ही भगवान अपने ईशित्व गुण का प्रदर्शन करके नीति-शास्त्र का पालन करते हुये—

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी। ईश देइ फल हृदय विचारी॥

वैसे ही लोगों के लिये कहा है कि "सबपर मोरि बराबरि दाया।" और जो भगवत्प्रपन्न हैं उनकी प्रपत्ति स्वीकार करते हुये भगवान अपने कृपादि माधुर्य गुणों के पालन का उद्घोष करते हुये स्वयं ही कहते हैं कि—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुशुण्डि शम्भु गिरिजाऊ॥
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय शरन तकि मोंही॥
तजि मदमोह कपट छल नाना। करौं सद्य तिहि साधु समाना॥
"अहंत्वासर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥" (गीता १८।६६)

इसी तरह अन्तरङ्गों का अनुभवपूर्ण निश्चय है कि--

"जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अतिमृदुल सुभाऊ"
"मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोप न काऊ॥"
कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणाँ शतमप्यात्मवत्तया (वा०रा० २।१।११)

सारांश यह कि भगवद्विमुखियों के लिये तो नीतिशास्त्र है और प्रपन्नों के लिये कृपादि गुणों का अनुगमन है। यथा--

शास्त्रं विमुखविषयं कृत्वा कृपादिकमभिमुख्यविषयं कुर्यात्।
(श्रीवचनभूषण के १४ वें सूत्र का वरवरमुनिभाष्य)

अतः यह निश्चित तथ्य है कि--

जिहि जन पर ममता अरु छोहू। तिहि करुनाकर कीन्ह न कोहू॥

इसका तात्पर्य यह है कि सुग्रीव और विभीषण पूर्णरूपेण-सर्वांग

पूर्ण भगवत् प्रपन्न है। परन्तु बालि प्रपन्न नहीं था इससे श्रीराम जी ने उसे मारा और जब बालि ने प्रपत्ति स्वीकार करलिया कि--

सुनहु राम स्वामी--अन्तकाल गति तोरि ॥

तो प्रपत्ति स्वीकार करते ही उसे भी--

बालि शीश परसा निज पानी। अचल करहुँ तनु राखहु प्राना ॥

कहा गया है उसके अमरत्व नहीं स्वीकार करने पर--

राम बालि निज धाम पठावा।

इस तरह से प्रपत्ति शास्त्र के सूक्ष्म रहस्य के अच्छी तरह अनुशीलन पूर्वक इस प्रसंग पर विचार करने से भगवान का भक्त पक्षपातित्व गुण दूषणावह नहीं रहता। (नोट—शास्त्रों का विचार संक्षिप्त रूप से मैंने यहां दिया है। आधुनिक मानसियों या तर्कशील विद्वानों के विचार मानस पीयूष आदि टीकाओं में देखे जा सकते हैं। दूसरों के विचार जो टीकाओं में देखे जा सकते हैं उन्हें अपने लेखों में देकर पिष्टपेषण अपना अभीष्ट कभी नहीं रहा)।

(ख) श्रीलक्ष्मणजी के सम्बन्ध में (मानस संघ से प्रकाशित मेरे) मानस सिद्धान्त ग्रन्थ देखने का कष्ट कीजिये। समासतः यही है कि जिस तरह श्रीरामजी तथा श्रीसीताजी में तात्विक अभेद है, केवल नरनाट्य सम्पादनार्थ विग्रह भेद है और वह भी कहने देखने मात्र के लिये है :--

"गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न"! अभिन्न होते हुये भी अनेक तरह की लीलायें होती रहीं। उसी तरह श्रीराम चारों भाइयों में मात्र विग्रह भेद ही है सो भी केवल लीला मात्र के लिए वास्तव में तात्विक भेद नहीं है। अतएव जैसे श्रीरामजी के सभी कार्य नरनाट्य पूर्त्यर्थ ही है वैसे श्रीलक्ष्मणजी के भी

कार्य है। इसीसे सुग्रीव ने--

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं।

श्रीलक्ष्मणजी को नाथ कहा है। एवं जैसे श्रीरामजी ने सुग्रीव के लिये अपूर्ण क्रियार्थक शब्द कहा था कि:--

तिहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली॥

अर्थात् यदि आज न आया तो कल मारूंगा (यदि आज आ गया तो नहीं मारूंगा) सुग्रीव को तो मारना अभीष्ट रहा नहीं इससे लक्ष्मणजी से कहा कि--

भय दिखाइ लइआवहु तात सखा सुग्रीव।

वैसे ही श्रीलक्ष्मणजी ने धनुष पर प्रत्यंचा मात्र चढ़ाया था, धनुष पर बाण सन्धान नहीं किया था, क्योंकि बाण अमोघ हैं और किसी को मारना तो है ही नहीं केवल नकली क्रोध का प्रदर्शन मात्र है। तात्पर्य यह कि श्रीलक्ष्मणजी का क्रोध नाट्य भी नर नाट्य पूत्यँर्थ ही है।

शंका—५६

अंगद कहा जाउँ मैं पारा। जिय सशय कछु फिर तीवारा॥

अंगदजी को फिरती वार क्या संशय था ? (लक्ष्मीधर पाठक)

समाधान

रामपादाब्जभ्रमरं तारेयं कपि नायकम्।
महाभागवतं वीरं नमाम्यंगदमन्वहम्॥

(क) श्रीगोस्वामीजी ने कवितावली में बहुत स्पष्ट कहा है कि-

जबं अगदादिन की गति मति पंगु भई०।

इसका मूल वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग पैंसठ अंगद का कथन है कि--

अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदंगदस्तथा ॥१८॥
अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतंमहत् ।

और जानकीजी से मिलकर—

निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्नवेति न निश्चितम् ॥१९॥
(जिय संशय कछु फिरती बारा)

जब कि सब के पार जाने में ही सन्देह था—

निज निज बल सब काहू भाषा । पार जाइके संशय राखा ॥

(स्मरण रखना चाहिये कि 'सब काहू बल भाषने वालों में' जाम्बवान्, अंगद और हनूमान् ये तीन प्रधान नहीं थे। कवितावली से ज्ञात होता है कि सबकी गति मति पंगु हो गई, परन्तु शंकाकार महोदय को अंगद के पार जाने में सन्देह नहीं है अपितु लौटने में सन्देह है जब सब वानरगण पार जाने में ही अपना सन्देह व्यक्त किये। वह संशय वास्तव में बल का ही है। यहां बल का ही प्रकरण है। अंगद का एक छलांग में सौ जोजन जाकर पुनः लौट आने का कभी का अनुभव तो था ही नहीं। हिम्मत करके कूदने पर उस पार पहुँच जाने का तो पूर्ण निश्चय है ही, परन्तु लौटते समय का संशय इसलिये हो सकता है कि कहीं पहिली बार की लम्बी कुदान में हाथ, पांव, कमर ने ही जबाब दे दिया तो? अथवा कोई अंग ही भंग हो गया तो?—

अंगदोऽप्याह मे गन्तुं पारं शक्यं महोदधेः ।
पुनर्लंघन सामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा ॥
(अध्यात्म रा० ४।९)

(ख) गुप्तचरों। ऐयारों-धूर्तों-जासूसों की तरह वेष परिवर्तन की विद्या राजकुमार अंगद को नहीं मालूम है, इस विद्या में वे कोरे कपि हैं। कपि सम्राट् वालि के कुमार और सुग्रीव

के युवराज (उत्तराधिकारी) हैं। अतः वे छिपकर तो जा नहीं सकते हैं, वे तो जब भी जायेंगे तो राजकुमार किंवा युवराज की ही अकड़ से, और ऐसी दशा में वहां सम्भवतः कार्य होने से पहिले ही जाते जाते ही जगद्विजयी रावण, मेघनाद सरीखे महावीरों से मुठभेड़ हो जाना अनिवार्य सा ही मालूम देता है। युद्ध में विजय सर्वथा अनिश्चित ही रहती है, तथा युद्ध में क्षतविक्षत होने से सर्वथा बचा रहना जीवों के लिये अनिवार्य सा ही है। अतएव इन सब सम्भावित समस्याओं पर विचार करते हुये सकुशल लौट आना संशयास्पद तो है ही। ऐसी दशा में तो संशय का न होना ही संशय का स्थान है।

(ग) ऐसा भी अर्थ हो सकता है और यही निश्चित अर्थ है कि जब सभी बानरों ने जाने तक में ही संशय रखा तो युवराज अंगद ने बड़े मांख से कहा कि जब मेरे सभी सैनिक वीरता का दम भरने वाले, असमर्थ निकम्मे हो गये हैं तो अब "जाउँ मैं पारा०" मैं स्वयं ही पार जाऊँगा। इतना सुनते ही सभी बानर बाहिनी पतियों की संदेहात्मिका दृष्टि कुमार अंगद की तरफ घूम गई कि इस अनशन व्रत के कारण जो सभी शिथिल हो गये हैं, जब बड़े बड़े वीर असमर्थ हो चुके हैं तो सदैव सुख की गोद में विहार करने वाले ये लड़के कैसे जा सकेंगे, जो अभी अभी अपने चाचा के डर से रो रहे थे कि--

दुहुं प्रकार भइ मृत्यु हमारी।

अरे यह तो केवल जवानी का जोश मात्र है--

भरुहाये नट भांट के चपरिचढ़े संग्राम। (दोहावली ४२२)

वाली बात है। बड़े लोग हैं कोरी डींग मार रहे हैं।

बानर वीरों की संदेहात्मक दृष्टि को अंगद ताड़ गये अतः

तुरन्त बोल पड़े कि "जिय संशय कछु" क्या मेरे कहने पर तुम लोगों के हृदय में कुछ सशय हो रहा है। वाल्मीकीय रामायण में भी इसी तरह का अर्थ करने से आगे ठीक होगा कि--

निवर्तने मे शक्ति स्यात् न वा, इति न निश्चितम् (कि.कां. ६५।१९)

मेरे लौटने की शक्ति का तुम लोगों को निश्चय नहीं है क्या ? "जिय संशय कछु" यदि ऐसा हो तो कहो मैं 'फिर'पुनः 'तोवारा' एकवारा, दोवारा की कौन कथा मैं लगातार 'ती' तीनवारा फिरूँ अर्थात् अभी कूद कर उसपार जाऊँ और वहां त्रिना विश्राम किये तुरन्त हीं फिर लौट जाऊँ तथा उसी क्षण अविश्रांत यहाँ से फिर लौट जाऊँ तथा तुरन्त ही फिर आकर जाऊँ और तब तीसरी वार लौट कर तब विश्राम लूँ। तुम लोगों ने मुझे क्या समझ रखा है।

यह केवल अंगद की गर्वोक्ति नहीं है वास्तव में अंगद में ऐसा बल था, तभी तो स्वयं श्रीरामजी ने भी अंगद के वल को प्रसंशा करते हुये कहा था कि--

बालि तनय बुधि बल गुण धामा।

हनुमन्नाटक में लिखा है कि जब श्रीरामजी अयोध्या के राज्यासन पर विराजमान हो चुके और सुग्रीव व हनुमदादि के सहित सम्पूर्ण वानर वहिनी और भरत सौमित्रि आदि तथा अयोध्या के सम्पूर्ण मानव महारथियों से सेवित हो गये उस समय अंगद ने कहा–हे श्रीरामजी आपने मेरे पिता का बध किया है, उस समय मैंने इससे आपको कुछ भी न कह कर पूर्ण रूप से आपकी सब तरह से सहायता किया था इसलिये कि आप उस समय निराश्रित, एकाकी, शोकाभिभूत, परदेश-मेरे राज्य में और मेरे आधीन मम मुखापेक्षी थे। परन्तु अब ? अब तो आप सब तरह से सम्पन्न हो गये हैं, अतः अब आप सुग्रीव, हनुमान् भरत सौमित्रि आदि के सहित

सम्पूर्ण मानवी एवं वानरी सैन्य को लेकर समरांगण में उतर आइये, मैं सभी को बिना किसी हथियार के केवल एक भुजा से ही मंथन कर डालूंगा--

पश्य श्रीरामचन्द्र! त्वदभिमतमहो लक्ष्मणेनापि तूर्णं,
रंगावतारेऽवतरतु भवानाहतो येन तातः।
सुग्रीवाञ्जनेयप्रमुखभटचमूचक्रवालेन सार्द्धं,
त्वामेकेनाँगदोऽहं पितृनिधनमनुस्मृत्य मथ्नामि दोष्णा ॥
(हनु० ना० १४।७३)

उस समय सरोषित अंगद का उत्तर किसी ने नहीं दिया, आकाशवाणी ने ही अंगद के बल की प्रशंसा करते हुये शान्त किया। अद्वितीय बीर बाली ने भी अंगद को अपने समान बली बताया था-

यह तनय मम सम बिनय बल० ।

नृसिंह पुराण और 'दूतांगदम्' नाटक में अंगद ने श्रीरामजी से ही कहा था कि--

अङ्गदः--मौलिमण्डलमिलत्करयुगलेन प्रणम्य यदाज्ञापयति देव! अवधार्यताम् ॥ (नृसिंह पुराण ५२।२७)

किं प्राकारविहारतोरणवतीं लंकामिहैवानये,
किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपतेस्तत्रैव सम्पादये ।
आकल्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बध्नामि वा सागरं,
देवादेशय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥
(नृसिंहपुराण ५२।२८, दूतांगदम् ना० ८)

अंगद की बात का समर्थन श्रीरामजी ने यह कहकर किया था कि--

साधु अंगद! नात्र बालिनन्दन!

अंगद के यथार्थ बलको हनूमानजी और जाम्बवान्जी जानते थे। हनूमानजी ने कहा है कि--

सर्वराक्षससंघानां राक्षसा ये च पूर्वजाः ।
अलमेकोऽपि नाशाय वीरो बालिसुतः कपिः ॥
(वा०रा० ५।५९।१४)

महाकवि श्रीक्षेमेन्द्र ने लिखा है कि अंगद ने समुद्रतट पर कहा था कि--

प्रत्युवाचाँगदो मानी पूजयित्वाथ तद्वचः ॥ ४३८ ॥
त्रैलोक्यलंधनसहा किं नु सन्तीह बानराः ॥ ४३९ ॥
अधुना नास्ति नः किञ्चिदगम्य व्यवसायिनाम् ॥ ४४० ॥
(रामायणमाँजरी किष्किधाकांडम्)

नवीं शताब्दी में महाकवि अभिनन्द ने अपने महाकाव्य रामचरितम् में भी यही बात बड़े विस्तार से लिखा है जिसका प्रतिपादन ऊपर विस्तार से किया गया है। देखिये--

ततोऽब्रवीद् विगलितवाहिनीबलः
सुतं विधेः सुरपतिसूनुसम्भवः ।
अनक्षरस्फुरितविकासपाटव--
स्फुटीकृतक्रमसदृशातिविक्रमः ॥ १५।३५ ॥
इहास्यतामतिशयितश्रमालसा
वनौकसः क्षणमहमेव केवलम् ।
जयाम्यमुं जलनिधिमार्यकार्यवान्
अधित्वरस्ततमिव सांकथारसम् ॥ ३६ ॥
न संभ्रमस्त्रिदशरिपौ दशानने
न बारिधौ न बिबुधधाम्नि चोत्तमे ।
अयंतरस्तरलितविष्टपस्य भोः
सुतो युवा सदृशबलोऽस्मि बालिनः ॥ ३७ ॥
अयं व्रजाम्युपरि महासरित्पतेः

पतत्पतेरपि जनयामि विस्मयम् ।
क्षुणद्मि तं हतपिशितात्पतिं क्षणात्
मरुत्पतिः सुतशिशुकेन मोदवाम् ॥३८॥
स्थितः स्थिरे मलयमहेन्द्रयोर्द्वयोः
महीध्रयोः क्षणमितरस्य मूर्धनि ।
पताम्यहो त्रिशिरसमद्रिमुद्धरन्
दशाप्यहं दशशिरसः शिरोमणीन् ॥३९॥
निरुध्यतां क्षणमतिसोत्सुकं मनो
वनौकसा परिषदवेक्ष्यतामियम् ।
उपैमि वः स्वजवसखो निरीक्ष्यतां
न रक्षसः पुरमिह यावदेव भोः ॥४०॥
पृषत्कवज्जलनिधिलंघनोद्यतं-
चमूपतिं तमिति जगाद जाम्बवान् ।
विलोकयन् प्रजविनमञ्जनासुतं
स्वयं जराविगलितविक्रमोद्यमः ॥४१॥
जितोऽस्ति ते जलधिरयं तरंगवान्
नभोऽङ्गणं तव कियदेतदङ्गद !
न वर्तते परमियतः प्रयोजनम्
महाप्रभोः स्वयमिह तीक्ष्णसाहसम् ॥४२॥
त्वमानिलीयमिह नो जवोत्तरं
विना पुनस्त्विदमनायका चमूः ।
अतोऽनघस्तुतिसमकालमुन्मिषन्
निजस्मृतिर्धुरमितरो वहत्विमाम् ॥४३॥

इन्हीं उक्त नौ श्लोकों के संक्षिप्त अनुवाद रूप में निम्न दोनों चौपाइयों के—

अंगद कहा जाउँ मैं पारा। जिय संशय कछु ? फिर तीवारा।।
जामवंत कह तुम सब लायक। किमि पठवौं सबही कर नायक।।

"तीबारा" शब्द सुनते ही जामवन्त ने विचार किया कि कहीं इसी झोंक में छलांग न लगा दें राज हठ जो ठहरी। अतः तुरन्त बोल पड़े कि—"तुम सब लायक।" तुम एक दो या तीन क्या सैकड़ों बार जा आ सकते हो "सब—सौ" लायक हो, सब = सब कुछ कर सकते हो। यथा—

तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान् वाक्यकोविदः।
ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम ॥२०॥
कामंशतं सहस्रं वा नह्येष विधिरुच्यते।
योजनानां भवान् शक्तो गन्तुं प्रतिनिर्वतितुम् ॥२१॥

बाल्मीकीयरामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग ६५)

अर्थात् तीन क्या आपतो इच्छा करते ही सौ या हजार योजन जाकर सैकड़ों हजारों बार जा आ सकते हैं। इस विषय में मेरे मन में कुछ भी सन्देह नहीं है, मुझे आपके बलपर पूर्ण बिश्वास है। परन्तु आप यहां समस्त वानरचमू के नायक-नियन्ता हैं। अतः—
नहि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथंचनः ॥ (बा०रा०कि०६५।२२)
तमाह जाम्बवान् वीरस्त्व नो राजा नियामकः।
न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि.९।। अध्यात्मरामायणकि.९)

किमि पठवौं सबही कर नायक।

जो बाल्मीकीयरामायण; अध्यात्मरामायण, नृसिंहपुराण, रामायण-मंजरी, दूतांगदम्, हनुमन्नाटक, महानाटक, रामचरितम् आदि प्रमाणिक सत् शास्त्रों को नहीं मानते या नहीं जानते वे तो इस समाधान के विरोध अर्थ करेंगे ही।—'तिनहि कहत कछु अघटित नाहीं।'

विषय सूची

नोट— मेरी असावधानी से १ शंका समाधान दो बार छप गया। प्रेस की असावधानी से शंका ५१ का ५० और ५२ का २५ छप गया है। अक्षरों में कई जगह प्रेस के प्रेतों की न उठने वाली लीला भी है।